हे चो का यात्रा-वृत्तांत

आठवीं सदी का भारत

अनुवाद : डॉ. जगदीश चंद्रिकेश

भूमिका : प्रो. कृष्ण मोहन श्रीमाली

हे चो का यात्रा-वृत्तांत
आठवीं सदी का भारत

हे चो का यात्रा-वृत्तांत

आठवीं सदी का भारत

प्रस्तुति-अनुवाद

डॉ. जगदीश चंद्रिकेश

भूमिका

प्रो. कृष्ण मोहन श्रीमाली

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 978-81-237-4924-2

पहला संस्करण : 2007 *(शक 1928)*

दूसरी आवृत्ति : 2009 *(शक 1931)*

हिंदी अनुवाद © नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006

The Hye Ch'o Diary
Memoir of the Pilgrimage of the five regions of India *(Hindi)*

रु. 40.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

अनुक्रम

हिंदी अनुवादक की अपनी बात सात
भूमिका नौ

भाग-1

बौद्ध तीर्थयात्री

फाहियान 3
सुंग य्विन और ह्वेइ शंग 6
ह्वान सांग 8
इत्सिंग 12
हे चो 15
तीर्थयात्रियों के विवरणों का महत्व 26
यात्रा विवरणों के पुनः अनुवाद की आवश्यकता 32
संदर्भ-ग्रंथ 36

भाग-2

संस्मरण का अनुवाद : भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थ-यात्रा

हे चो का यात्रा संस्मरण
भारत के पांचों क्षेत्रों की यात्रा 39
संदर्भ-सूची 72

हिंदी अनुवादक की अपनी बात

हे चो का यह 'भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थ-यात्रा का विवरण' भारत स्थित कोरिया दूतावास की द्विमासिक पत्रिका *कोरियन न्यूज* में सन् 1984 में धारावाहिक रूप से चार अंकों में प्रकाशित हुआ था। फाहियान और ह्वान सांग के यात्रा-वृत्तांतों के मैं अंग्रेजी और हिंदी अनुवाद पढ़ ही नहीं चुका था, बल्कि अपने लेखन की आधार-सामग्री कनिंघम तथा अन्य पुरातत्वविदों की खोजों के विवरण से लेकर लेखन कार्य भी कर चुका था। हे चो के यात्रा-वृत्तांत की सामग्री चौंकाने वाली थी। ह्वान सांग और हे चो के विवरणों में एक व्यापक अंतर्विरोध और वैविध्य ने मुझे आकर्षित किया।

अंग्रेजी में प्रकाशित इस वृत्तांत का हिंदी अनुवाद करते समय मेरा भरसक प्रयास रहा है कि अनुवाद पठनीय हो और उसकी व्याख्या (पाद-टिप्पणियों) में भाषा विज्ञान, पुरातत्व और इतिहास की अध्ययनवृत्ति की अद्यतन उपलब्धियों का समावेश हो तथा अनुवाद मानक स्तर का हो। कोष्ठक में अलग प्रदर्शित पाद-टिप्पणियां मेरी हैं, जो मेरी जानकारी के अनुसार अद्यतन हैं, बौद्ध स्मारकों : कुशीनगर और सारनाथ संबंधी कुछ टिप्पणियां मैंने उन स्मारकों को देखने के बाद की हैं।

अनुवाद को पठनीय बनाने के साथ-साथ, विश्वसनीय एवं स्तरीय बनाने के दायित्व का वहन करके श्री अनंतराम गौड़ ने मुझे जो कृतार्थ किया है, उसके लिए मैं आभारी हूं। श्री गौड़ जाने-माने लेखक, पत्रकार हैं और भारत स्थित ब्रिटिश उच्चायोग के सूचना विभाग में हिंदी संपादक रहे हैं। यात्रा-वृत्तांत में आए चीन के स्थान व व्यक्ति नामों के सही उच्चारण सहित हिंदी में लिखने में मुझे श्री त्रिनेत्र ज़ोशी का अमूल्य सहयोग मिला है, जिसके लिए मैं उनका आभारी हूं। श्री जोशी जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से चीनी भाषा में स्नातक हैं और नौ वर्ष तक पेइचिंग में भाषा विशेषज्ञ के तौर पर कार्यरत रहे हैं।

मुझे इस बात का भी संतोष है कि हे चो के इस यात्रा-वृत्तांत के माध्यम से मैं अपने देश की आठवीं शताब्दी के हलचल भरे दौर के इतिहास की विलुप्त

कड़ी को सामने ला सका हूं। उल्लेखनीय है कि हमारे इतिहास के पास कोई भी उल्लेख, पुरालेख या साक्ष्य नहीं है जो आठवीं शताब्दी की राजनीतिक या सामाजिक स्थितियां बता सके; पश्चिमी भारत में अरबों और उत्तरी भारत में हूणों व शकों के आक्रमण की बात बता सके। यह बात भी हमें अरबों का इतिहास या फिर हे चो बताता है, जो 725 में पश्चिमी भारत में पहुंचा था कि सन् 712 में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध के राजा दाहिर पर आक्रमण किया। हे चो बताता है, कि यहां के आधे देश पर अरबों ने कब्जा कर रखा था, यहां तबाही मचा रखी थी। हां, वटपी का हमारे पास एक पुरालेख जरूर है, वह भी मात्र इतना ही बताता है कि सन् 756 में अरबों के आक्रमण को विफल कर दिया गया।

अस्तु, आठवीं सदी के भारत और मध्य एशिया की जानकारी देने के लिए हम हे चो के आभारी हैं। आशा है कि हे चो की इस जानकारी से प्राच्य भारतीय इतिहास के अध्येता लाभान्वित होंगे।

नई दिल्ली, **जगदीश चंद्रिकेश**

2006

भूमिका*

(1)

भारत के अत्यंत लंबे इतिहास में शायद ही ऐसा कोई समय रहा हो जब उसका संबंध सुदूर विदेशों से न रहा हो। ये संबंध व्यापारिक भी थे और सांस्कृतिक भी। इस प्रकार के संबंधों में विचारों का आदान-प्रदान बहुत स्वाभाविक होता है। पुरातात्विक स्रोतों के आधार पर इन संबंधों का इतिहास तो कम से पांच हज़ार साल पुराना है परंतु साहित्यिक स्रोतों की श्रृंखला देखें तो भारत और उसके पश्चिमी देशों के संपर्कों को **ऋग्वेद** और **ज़ेंद अवस्ता** में ढूंढ़ा जा सकता है। ये दोनों ही रचनाएं 3500 साल से ज्यादा पुरानी नहीं है। लगभग 2500 वर्ष पूर्व यूनानी इतिहासकार हैरोडोटस ने भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की तत्कालीन सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों पर उपयोगी टिप्पणियां की। इसी श्रृंखला में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कदम मैगेस्थनीज़ का भारत आगमन था। यह यूनानी राजदूत मौर्य युग में लगभग 2300 वर्ष पूर्व भारत आया था और उसने **इंडिका** नामक ग्रंथ लिखा, जो तत्कालीन भारत का रोचक विवरण प्रस्तुत करता है। मैगेस्थनीज़ और उसकी रचना ने एक ऐसी परंपरा का सूत्रपात किया, जिसका अंत आज तक नहीं हुआ। यूनान के अलावा यूरोप के अन्य क्षेत्रों जैसे फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी, पुर्तगाल, हॉलैंड, इटली, रूस इत्यादि के उत्सुक आगंतुकों; पश्चिमी एशिया के अनेकानेक अरबी, ईरानी और तुर्की यात्रियों; पूर्वी एशिया में चीन, जापान, कोरिया; और तिब्बत से आए विभिन्न तीर्थ यात्रियों ने भारत संबंधी विशद् संस्मरण और विवरण छोड़े हैं। ये सभी इतिहास लेखन के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनकी अपनी सीमाएं भी हैं और इतिहासकारों ने संवेदनशील तरीकों से इनके अध्ययन की कार्यविधि विकसित की है। ज़ाहिर है कि विदेशियों के इन वृत्तांतों को अक्षरशः स्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर भी वैकल्पिक स्रोतों के रूप में इनके महत्त्व को नकारा भी नहीं जा सकता। आठवीं सदी के कोरियाई बौद्ध भिक्षु **हुई**

* इस भूमिका के खंड 2 से 4 के लेखन में उपयोगी जानकारी और सहयोग देने के लिए मैं अपनी कोरियाई शोध-छात्रा जे-उन शिन का विशेष रूप से आभारी हूं।

शाओ (हे चो) का यात्रा-वृत्तांत भी इसी श्रेणी की पर्याप्त सहायक रचना है।

(2)

हुई शाओ का जन्म सिल्ला (या शिल्ला) युगीन कोरिया में संभवतः 704 ई. में हुआ था। वे लगभग 16 वर्ष की युवावस्था में थांग वंशीय चीन चले गए। चूंकि सिल्लाई कोरिया में उनके आरंभिक जीवन से संबंधित दस्तावेज़ नहीं मिलते अतः थांगी चीन पहुंचने के अनेक कारणों की भी जानकारी नहीं मिलती। अधिक संभावना तो यही लगती है कि बौद्ध धर्म के अध्ययन की उत्सुकता ने ही उन्हें चीन जाने के लिए प्रेरित किया हो। सिल्ला युगीन कोरिया में विशेष रूप से ऐसी कुछ प्रवृत्ति सी बन रही थी कि बौद्ध भिक्षु अपनी शिक्षा और बौद्ध सूत्रों को प्राप्त करने के लिए अक्सर चीन चले जाते थे। उनमें से कुछ चीन में ही रह जाते थे, कुछ भारत की ओर निकल जाते थे और कुछ कोरिया वापस लौटकर बौद्ध संघ में ऊंचे पदों पर नियुक्त हो जाते थे।

हुई शाओ ने थांग वंशी चीन में ग्वांग-ज़ाउ (आधुनिक कैंटन) में वज्रबोधि (671-741 ई.) और उनके शिष्य अमोघवज्र (705-774 ई.) के पास बैठकर तांत्रिक बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। वज्रबोधि का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था और वे भारतीय बौद्ध भिक्षु के रूप में प्रसिद्ध थे। वे अपने शिष्य अमोधवज्र को साथ लेकर श्रीलंका और सुमात्रा होते हुए 719 ई. में ग्वांग-ज़ाउ पहुंचे। वहां वे बहुत थोड़े समय के लिए ही रुके थे और उसी दौरान उनकी मुलाकात हुई शाओ से हुई। उसके बाद वज्रबोधि ग्वांग-ज़ाउ से निकल कर थांग चीन की राजधानी छांगन (आधुनिक ज़ियान) पहुंचे जहां उन्होंने तांत्रिक बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। वज्रबोधि ने अपना अधिक समय धार्मिक अनुष्ठानों को संपन्न करने तथा बौद्ध ग्रंथों का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद करने में लगाया।

अपने गुरु वज्रबोधि के परामर्श पर हुई शाओ ने संभवतः 723 ई. में भारत की ओर प्रस्थान किया। हालांकि यह निश्चित नहीं है कि वह थल मार्ग से अथवा समुद्री मार्ग से भारत पहुंचा, फिर भी अधिक संभावना यही है कि उसने समुद्री मार्ग ही अपनाया हो। भारत पहुंचकर उसने लगभग चार वर्ष बिताए। इस दौरान वह जगह-जगह गया। उसके बाद गु-ज (कूचा, जो अन-सी प्रांत का महत्त्वपूर्ण केंद्र था) होता हुआ वह 727 ई. में छांगन वापस लौट गया। हुई शाओ ने **वांगओ - शिओन - छुक - गुक - ज़ियोन** (अथवा एक अन्य उच्चारण में **वांग - वु - तियान - ज़्हू - गुओ - तियान**) अर्थात् **भारत के पांच क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा के संस्मरण** शीर्षक से अपना यात्रा वृत्तांत लिखा।

छांगन वापस लौटने के बाद हुइ शाओ ने बौद्ध मठ में वज्रबोधि के निर्देशन में **दा - छेंग - यु - जिया - जिन - गांग - ज़िंग - हाइ - मान - शु - शि - लि -**

कियान - बि - कियान - बो - दा - ज़िआओ - वांग - जिंग (Da - cheng - yu -jia - jin - gang - xing - hai - man - shu - shi - li - qian - bi - qian - bo - da - jiao - wang - jing) नामक तांत्रिक ग्रंथ का आठ वर्षों तक अध्ययन किया। 704 ई. में उसने इसी तांत्रिक रचना का संस्कृत से चीनी भाषा में अनुवाद कार्य आरंभ किया किंतु अगले ही वर्ष वज्रबोधि के निधन की वजह से इस काम को स्थगित करना पड़ा। एक लंबे अंतराल के बाद हुई शाओ ने इस अनुवाद कार्य को वज्रबोधि के शिष्य अमोघवज्र के मार्ग दर्शन में 773 ई. में फिर आरंभ किया। अनुवाद कार्य के अलावा हुई शाओ अनेक तांत्रिक अनुष्ठानों को भी संपन्न किया करता था। 774 ई. में अमोधवर्ष का भी निधन हो गया। अपनी वसीयत, जो युआन-ज़ाओ द्वारा संपादित **दाई - ज़ौंग - छाओ - ज़ेंग - सि - कौंग - दा - बियान - ज़ेंग - गुआंग - ज़्ही - सान - ज़ांग - हे - शांग - बिआओ - ज़्ही - जि (Dai - Zong - chao - zeng - si - kong - da - bian - zheng - guang - zhi - san - zang - he - shang - briao - zhi - ji)**[1] का ही अंश है, अमोधवज्र ने लिखा :

> ''गत तीस वर्षों के दौरान जब मैं तांत्रिक बौद्ध धर्म पढ़ा रहा था, तब मेरे अनेक शिष्य थे। उनमें से आठ विशिष्ट शिष्य थे, जो पांच शाखाओं के सिद्धांतों का अनुसरण और प्रसारण किया करते थे।[2] किन्तु उनमें से अब केवल छह शिष्य है क्योंकि दो शिष्यों का पहले ही निधन हो चुका है। ये छह शिष्य इस प्रकार हैं : ज़िंग-गे मठ में हान-गुआंग; गिंग-लौंग मठ में सिल्लां का हुई शाओ और हुइ-गुओ; चौंग-फु मठ में हुइ-लांग; तथा बाओ-शोउ मठ में युआन-जिआओ और जुए-छाओ। मैं यह कहना चाहूंगा कि आप सभी को अपने छात्रों का मार्ग दर्शन और उनके सभी प्रश्नों और जिज्ञासाओं का निवारण करना चाहिए। इस प्रकार आप सभी मेरे प्रति ऋण से उन्मुक्त हो पाएंगे।''

अमोघवज्र के निधन के बाद हुई शाओ और अमोधवज्र के अन्य शिष्यों ने मिलकर सम्राट को एक ज्ञापन-पत्र दिया, जिसमें गुरु के अंतिम संस्कार के भव्य प्रबंधों और उस अवसर पर न्योछारित शाही भेटों की प्रशंसा की। इसी ज्ञापन-पत्र में सम्राट से यह भी अनुरोध किया कि वे अमोधवज्र द्वारा स्थापित बौद्ध मठ और मंदिर को बनाए रखने के लिए सुविधाएं दें। यह ज्ञापन-पत्र स्वयं हुई शाओ ने तैयार किया था।

---

1. इसमें अमोधवज्र और हुई शाओ सहित लगभग दस भिक्षुओं से संबंधित अनेक प्रकार के दस्तावेज हैं। युआन-ज़ाओ ने इसका संपादन 800 ई. से पहले किया था।
2. तांत्रिक बौद्ध धर्म के वज्रयान संप्रदाय में पांच शाखाओं का अर्थ वज्र, रत्न, पद्म, खड्ग और चक्र लगाया जाता था और यह पंचवर्गी विभाजन पंच बुद्धों के समान था।

युआन-ज़ाओ द्वारा संपादित उपरोक्त ग्रंथ के अनुसार हुई शाओ ने सम्राट के आदेश पर वर्षा के लिए अनुष्ठान संपन्न किए। 780 ई. में 15 अप्रैल और 5 मई के बीच वह अनेक मठों में रहा। वु-थाई पर्वतमाला स्थित छिएन युआन-पु-ति मठ में रहकर उसने **दा - चेंग - यु - जिया - जिन - गांग - ज़िंग - हाइ - मान - शु - शि - लि - कियान - बि - कियान - बो - दा - जिआओ - वांग - जिंग (Da - cheng - yu - jia - jin - gang - xing - hai - man - shu - shi - li - qian -bi - qian - bo - da - jiao - wang - jing)** नामक तांत्रिक ग्रंथ पर भाष्य लिखा। 780 ई. हुई शाओ का निधन हो गया।

(3)

वांगओ - शिओन - छुक - गुक - जियोन (अथवा अन्य उच्चारण में वांग - वु - तियान - ज़्हू - गुओ - तियान (Wang - o - cheon - chuk - guk - jeon) की खोज संक्षिप्त इतिहास

हुई शाओ कृत यात्रा वृत्तांत के बारे में सबसे पहले तब पता चला जब 1908 में पॉल पेलियो ने चीन स्थित दुनहुआंग में **वांगओ - शिओन - छुक - गुक - जियोन** की पांडुलिपि का अंश ढूंढ़ा। हुई लिन कृत **यि - की - जिंग - यिन - थी (Yi - qie - jing - yin - yi)** में प्राप्य शब्दों से तुलना के आधार पर पेलियो ने हुई शाओ के संभावित काल और उसकी यात्रा के मार्ग का प्रतिपादन किया। हुई लिन की रचना एक ऐसे प्रकार का कोष है जिसमें प्राचीन बौद्ध रचनाओं में मिलने वाले कठिन शब्दों की व्याख्या और भाष्य मिलते हैं। इसी रचना के एक उप-पर्व में हुई शाओ के यात्रा वृत्तांत के पहले तीन खंडों का भी उल्लेख है।

पेलियो ने अपने आरंभिक अध्ययनों के आधार पर हुई शाओ की रचना की पांडुलिपि को नवीं शताब्दी ईस्वी का बताया। किंतु हाल में किए गए शोध के अनुसार पांडुलिपि में लगे कागज और अक्षरों की शैली इस बात का संकेत देते हैं कि वह आठवीं शताब्दी में तैयार की गई होगी। जापानी विद्वान तोकियो ताकादा (Tokio Takada) ने 1991 में पांडुलिपि की भाषा संबंधी विशेषताओं का सारगर्भित विवेचन करते हुए यहां तक लिख दिया कि शायद हुई शाओ ने स्वयं इस पांडुलिपि को तैयार किया और मध्य एशिया से चीन लौटते हुए उसी ने उसको दुनहुआंग में रख दिया।

पॉल पेलियो ने अपनी खोज को चीन के अनेक विद्वानों को भी दिखाया। ज़ेह्न-यूलुओ (Zhen-yu Luo) जैसे कुछ विद्वानों का मानना है कि दुनहुआंग की पांडुलिपि वास्तव में हुई शाओ के मूलतः तीन खंड वाले वृहत्तर ग्रंथ का सार है;

जबकि ओतानी (Otani) के अनुसार यह पांडुलिपि दूसरे खंड के उत्तरार्द्ध और संपूर्ण तीसरे खंड का अंश है।

खोज के आरंभिक प्रयासों के बावजूद हुई शाओ की पूर्ण पहचान 1915 में ही हो पाई जब जापान के बौद्ध विद्वान जुंजिरो ताकाकुसु (Junjiro Takakusu) ने अमोधवज्र की वसीयत का विश्लेषण किया। ताकाकुसु ने ही उसे सिल्ला कालीन कोरियाई बताया और इस बात की भी स्थापना की कि उसने थांग कालीन चीन में वज्रबोधि के साथ बैठकर बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। **वांगओ - शियोन - छुक - गुक - जियोन** में प्राप्य हुई शाओ की एक कविता से भी इस बात की पुष्टि होती है कि वह सिल्ला का था क्योंकि इस काव्य रचना में उसने ग्येलिम (Gyelim) को अपना मूल स्थान बताया जो सिल्ला का ही दूसरा नाम है।

दुनहुआंग की पांडुलिपि की खोज के तीस वर्ष बाद हुई शाओ की रचना का पहला विदेशी भाषा का अनुवाद 1938 में डब्ल्यू फुश ने जर्मन में किया। इसके तीन वर्ष बाद 1941 में पांडुलिपि और फुश कृत अनुवाद की तुलना करते हुए तोरू हानेडा (Toru Haneda) ने जापानी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया जो बहुत विश्वसनीय माना जाता है।

1986 में जापान और इटली के विद्वानों के सम्मिलित प्रयास से हुई शाओ पर विशिष्ट शोध परियोजना तैयार की गई। इन प्रयासों के फलस्वरूप 1992 में ऐसे अनेक लेखों को एकत्रित किया गया, जो एशिया और यूरोप के विद्वानों ने हुई शाओ के संबंध में प्रकाशित किए थे। इसके साथ-साथ आंशिक पांडुलिपि के चित्र, जापानी अनुवाद, उपयोगी भाष्य और हुई शाओ की यात्रा मार्ग का यथा संभव मानचित्र भी प्रकाशित हुआ।

1934 में नाम-सियोन चोई (Nam-Seon-Choi) ने पहली बार कोरियाई भाषा में हुई शाओ की रचना को कोरियाई विद्वानों के सामने प्रस्तुत किया। उसके बाद गत लगभग 70 वर्षों में अनेक कोरियाई विद्वानों ने हुई शाओ को अपने शोध कार्यो का केंद्र बनाया। इस शृंखला में 2002 में प्रकाशित सू-इल-जियोंग (Su-Il Jeong) कृत हुई शाओ के यात्रा का कोरियाई भाषा में अनुवाद अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। सू-इल-जियोंग सांस्कृतिक आदान-प्रदान संबंधी अध्ययनों के विशेषज्ञ हैं और उपरोक्त अनुवाद में उन्होंने हुई शाओ का जीवन चरित, **वांगओ - शियोन - छुक - गुक - जियोन** संबंधी इतिहास लेखन का पुनरावलोकन, यात्रा के मार्गों से संबंधित विवादों, हुई शाओ द्वारा वर्णित स्थानों का सूक्ष्म विश्लेषण आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन किया है।

(4)
सिल्ला में बौद्ध धर्म का संक्षिप्त इतिहास

कोरिया के प्राचीन इतिहास में तीन साम्राज्यों का ज़िक्र होता है। सिल्ला उनमें से एक था। परंपरा के अनुसार इसकी स्थापना ई. पू. 57 में बाक ह्योकगियोज़ (Bak Hyeokgeose) ने कोरियाई प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी क्षेत्र में ग्योंग्जू (Gyeongju) के आसपास की थी। हमें इस प्रकार की जानकारी सबसे पहले 12वीं शताब्दी में रचित **सांगुक्सागी (तीन साम्राज्यों के ऐतिहासिक दस्तावेज़) (Samguksagi)** में मिलती है।

सातवीं ईस्वी शताब्दी के दौरान सिल्ला ने चीन के थांग वंश के साथ गठबंधन किया और फिर कोरिया के दो अन्य साम्राज्यों पर विजय प्राप्त की। इस प्रक्रिया में सिल्ला ने 660 ई. में बाइक्जे (Baekje) और उसी दशक में 668 ई. में गोगुर्यो (Goguryeo) को भी अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। उसके बाद 676 ई. में थांग ताकतों को बाहर खदेड़ कर तीनों साम्राज्यों का एकीकरण किया। अतः 668 ई. के बाद के वर्षों में सिल्ला साम्राज्य को प्रायः एकीकृत सिल्ला भी कहा जाता है। यह एकीकृत साम्राज्य 267 वर्षों तक चला – 935 ई. में गोर्यो (Goryeo) के सम्राट ग्योंग्सुन (Gyeongsun) ने अपनी सत्ता की स्थापना की।

सिल्ला कालीन कोरियाई इतिहास में बौद्ध धर्म की सामाजिक और राजनीतिक भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण थी। हालांकि कोरिया में बौद्ध धर्म का आगमन पांचवीं शताब्दी के मध्य हुआ जब बौद्ध भिक्षु आदो (Ado / Ahdo) गोगुर्यो से सिल्ला पहुंचा। किंतु दंत कथाओं के अनुसार सिल्ला में बौद्ध धर्म का प्रसार उसकी गतिविधियों से नहीं बल्कि सिल्ला दरबार के संभ्रात पुरुष इच्छादों (Ichadon) की शहादत के कारण हुआ। कहा जाता है कि सिल्ला नरेश ने 527 ई. में इच्छादों की हत्या करवा दी क्योंकि वह बौद्ध धर्म में विश्वास रखता था। अतः ऐसा माना जाता है कि कोरिया में बौद्ध धर्म का औपचारिक पदार्पण सिल्ला राज्य में 527 ई. में सम्राट बियोफियूंग (Beopheung) के नेतृत्व में हुआ।

बियोफियूंग और उसके बाद छह सिल्ला शासकों ने बौद्ध नाम धारण किए और उन्होंने अपना निरूपण भी बुद्ध-नरेशों के रूपों में किया। बाइक्जे और गोगुर्यो साम्राज्यों की तुलना में एकीकृत सिल्ला साम्राज्य में बौद्ध धर्म को कहीं अधिक राजकीय मान्यता प्राप्त थी। जवान योद्धाओं के अभिजात्य वर्गीय ह्वारांग (Hwarang) दल ने कोरियाई प्रायद्वीप में सिल्ला एकीकरण में विशेष योगदान दिया था। इस दल के सदस्यों का बौद्ध धर्म से घनिष्ठ संबंध था। वे मैत्रेय बुद्ध के आराधक थे। सिल्ला काल में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता चरम सीमा पर थी। इस दौरान अनेक बौद्ध मंदिरों और मठों का निर्माण हुआ, जिन्हें ऊंचे-ऊंचे ओहदे वाले अभिजात्य वर्ग का न केवल संरक्षण प्राप्त था बल्कि वित्तीय समर्थन भी। इन मंदिर-मठों में ह्वांग्योंग्सा

(Hwangyongsa), बुल्गुक्सा (Bulguksa) और सियोक्गुराम (Seokguram) प्रमुख हैं। ह्वांग्योंग्सा तो विशेष रूप से राजशाही के संरक्षण की शक्ति को प्रदर्शित करता है। कहा जाता है कि इसका नौ-मंज़िला लकड़ी का पैगोडा (मेरूनुमा मंदिर) उन नौ राष्ट्रों का प्रतीक था, जो सिल्ला प्रभुसत्ता के प्रति समर्पण करने वाले थे।

चूंकि एकीकृत सिल्ला साम्राज्य में बौद्ध धर्म को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त थी इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अनेक बौद्ध भिक्षु अपने धर्म का परिमार्जन और प्रसार के लिए देश के बाहर भी जाएं। जहां एक ओर वांग्वांग (Wangwang), छाजांग (Chajang), उइसांग (625-702 ई.) (Uisang) और वांछुक (Wanchuk) बौद्ध धर्म के गहन अध्ययन के लिए चीन गए वहीं दूसरी ओर हुई शाओ (हेचो) भी इसी उद्देश्य से सुदूर भारत की यात्रा करने से हिचके नहीं।

थांग युगीन चीन में विशेष अनुभव हासिल करने के बाद जब अनेक भिक्षु कोरिया लौटे तो विभिन्न बौद्ध संप्रदायों का प्रभाव भी उनके साथ ही आ गया। इस प्रभाव के कारण सिल्लाई कोरिया में पांच सैद्धांतिक बौद्ध संप्रदायों का विकास हुआ, जो इस प्रकार थे[3]–

1. क्येयूल-छोंग (Kyeyul-chong)–यह 'विनय' अर्थात् बौद्ध संघ के अनुशासन पर आधारित था;
2. योल्बान-छोंग (Yolban-chong)–यह **महापरिनिर्वाण सूत्र** की शिक्षाओं पर आधारित था;
3. पॉप्सोंग-छोंग (Popsong-chong) अथवा हे-डांग (He-dang)–ऐसा विशिष्ट कोरियाई बौद्ध संप्रदाय था, जो बुद्ध के धर्मकाय को आधार मानकर समन्यवादी दृष्टिकोण का पक्षपाती था;
4. ह्वाओम [Hwaom = चीनी हुआ-येन (Hua-yen)], जो अभिताभ बुद्ध का नाम लेकर स्वर्ग अर्थात् सुखावती तक पहुंचाने वाले **अवतंसक सूत्र** पर आधारित था; और अंततः
5. महायान के योगाचार संप्रदाय की 'मात्र चेतना' पर आधारित (**विज्ञप्ति-मात्रता**) शिक्षाओं को मानने वाला संप्रदाय (पॉप्संग-छोंग) (Popsang-chong)।

सिल्ला समाज में सत्तावादी राजतंत्र और सशक्त अभिजात वर्ग के अधीन वैभिन्नयपूर्ण, विशाल और शोषित जन-समुदाय थे। जन धर्म के क्षेत्र में भी इस राजनीतिक एकीकरण की परछाई झलकनी अवश्यंभावी थी। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि उपरोक्त पांचों कोरियाई बौद्ध संप्रदायों में से ह्वाओम की सामाजिक मान्यता कहीं अधिक थी। उइसांग द्वारा रोपित इस दार्शनिक पौधे का सैद्धांतिक आधार

3. यह विवरण मर्सिया इलिएड द्वारा सम्पादित *एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रेलीजन* (प्रथम संस्करण, 1987), खंड, 2 पृ. 421-26 पर आधारित है।

यही था कि सर्वव्यापी अनेकता में एकत्व छुपा रहता है।

सिल्ला युगीन बौद्ध धर्म की एक विशेषता यह भी रही है कि इसने प्रायद्वीप में कोरियाई दर्शन की नींव डाली। यदि संपूर्ण पूर्वी एशिया के इतिहास को भी ध्यान में रखें तो यह बात ख़ास गौर के लायक है कि सिल्ला युग में विभिन्न बौद्ध संप्रदायों में आपसी समरसता स्थापित करने का विशेष प्रयास किया गया था। इस काम में विशेष योगदान वॉनूह्यो (Wonhyo) (617-680 ई.) का रहा। बुद्धकाय और अवतंसक संप्रदायों का विशेष अध्ययन करने के अलावा उन्होंने प्रज्ञा, निर्वाण, अभिताभ आदि अनेक सूत्रों पर भी भाष्य लिखे। धर्मों के क्षेत्र में वॉनूह्यो के प्रयासों की तुलना राजनीतिक क्षेत्र में सिल्ला सम्राटों की एकीकरण की नीति से की जा सकती है। वॉनूह्यो ने एक ओर भारत स्थित माध्यमिक और योगाचार जैसे महायान संप्रदायों में आपसी ताल-मेल बिठाया और दूसरी ओर भारतीय एवं चीनी बौद्ध दर्शनों के बीच भी सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया। उन्होंने न केवल सिल्ला अभिजात वर्ग को बौद्ध दर्शन संबंधी ज्ञान दिया बल्कि सामान्य कृषकों के बीच भी घूम-घूमकर लोकप्रिय भाषा में रचे गीत और काव्यात्मक रचनाओं द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार और प्रसार किया। कहा जाता है कि वॉनूह्यो के इन बहुमुखी प्रयासों की वजह से सिल्ला युग में 80 से 90 प्रतिशत लोगों ने बौद्ध धर्म अपना लिया था।

एकीकृत सिल्ला साम्राज्य के इतिहास में बाद में वह चरण भी आया जब कोरिया की राजनीति में बौद्धधर्म की भूमिका कुछ धूमिल सी हो गई। राजशाही ने बढ़ते हुए राज्य पर शासक और अभिजात कुलों की ताकत पर अंकुश लगाने के लिए राज्यतंत्र संबंधी चीन के कंफ्यूशियसवादी संस्थानों का सहारा लेना आरंभ कर दिया था। परंतु फिर भी शिक्षा और बौद्ध सूत्रों की खोज में सैंकड़ों सिल्ला भिक्षु थांगी चीन जाते रहे।

(5)

सिल्ला कालीन सामाजिक-राजनीतिक संरचना

हुई शाओ की मानसिकता को समझने के लिए तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक ढांचे को समझना उपयोगी रहेगा। सातवीं शताब्दी में जब एकीकृत सिल्ला साम्राज्य का उदय हुआ, उसके बाद कोरियाई प्रायद्वीप में कुल मिलाकर सामंती व्यवस्था ने जड़ें पकड़ ली थीं। यह भी कहा जा सकता है कि सातवीं और दसवीं शताब्दियों के बीच जिस प्रकार की सामंती सामाजिक संरचना भारत में देखने को मिलती है, उसी प्रकार का विकासक्रम कोरिया में भी देखा जा सकता है। ऐसी समांतर संरचनाओं का मुख्य

भौतिक आधार था कृषि योग्य भूमि का हस्तांतरण और कृषि कर्मियों का शोषण। भारत के समान कोरिया में भी उपरोक्त शताब्दियों के दौरान अभिजात और संभ्रांत वर्ग तथा शासक वर्ग के लोगों को ऐसे स्थायी अधिकार दिए गए, जिनके अंतर्गत अनेक विशेषाधिकार युक्त भूमिदान दिए जाते थे। उदाहरणार्थ, 669 ई. में सिल्ला राज्य में प्राप्य घोड़ों के 174 फार्मों में से केवल 22 राजप्रसाद (शाही महल) को और 10 विभिन्न सरकारी पदाधिकारियों को प्राप्त थे। शेष सभी 142 फार्म अभिजात वर्ग के किम यू-सिन (Kim yu-sin), किम इन-मुन (Kim In-mun) व अन्य सदस्यों में बांट दिए गए थे। सरकारी अफसरों को वेतन के बदले में **नोगुप *(nogup)*** अर्थात् 'भत्ता गांव' दिए जाते थे। इस प्रकार के दानों के भोगी न केवल अनाज के रूप में कर उगाहते थे बल्कि दान में मिली जमीनों पर काम करने वाले किसानों से बेगार (जबरदस्ती श्रम कार्य) भी करवाते थे। हालांकि राजतंत्र ने इस व्यवस्था को कुछ समय के लिए बंद भी किया था किंतु अभिजात वर्ग के दबाव को बहुत अधिक समय तक रोका नहीं जा सका। अभिजात शासक वर्ग की शान-शौकत और समृद्धता का वर्णन नवीं शताब्दी के अंत वाले एक दस्तावेज़ में क्योंग्जू (सिल्ला साम्राज्य की राजधानी, जिसका शाब्दिक अर्थ 'स्वर्ण नगरी' था) के इस वर्णन में मिलता है :

> ''क्योंग्जू की आबादी, 1,78,936 कुटुंबों की थी, जो 55 वार्डों में बंटे हुए 1360 रिहायशी मुहल्लों में फैले हुए थे। क्योंग्जू की चार-दीवारी में एक भी छप्पर वाला घर नहीं था जबकि बड़े आंगनों से सुसज्जित और पक्की खपरैलों की छतों से बने भवनों की अटूट पंक्तियां खूब देखी जा सकती थीं। सारे दिन-रात गान-संगीत की अनंत मधुर आवाजों से गुंजित सड़कें और गलियां भी कम नहीं थीं। अत्यधिक घनी लोगों की 35 ऐसी अट्टालिकाएं थीं जिनका उपयोग चार अलग-अलग ऋतुओं में होता था।''

राजकीय इतिहास **ह्सिन थांग शु** (Ḥsin T'ang shu) अर्थात् **थांग का नवीन इतिहास** में एकीकृत सिल्ला साम्राज्य के संभ्रांत वर्ग का निम्न वर्णन पढ़कर हैरानी नहीं होती :

> ''राज्य के उच्चतम पदाधिकारियों के घरों में अनंत आय का बहाव रहता है। इन पदाधिकारियों के पास 3000 दास हैं और इसी अनुपात में हथियार, घोड़े, मवेशी और सूअर हैं।''

कोरिया के पुरातत्वविदों ने क्योंग्जू में हुए उत्खननों से इस प्रकार के सिल्ला कालीन अभिजात-वर्गी जीवन शैली के अवशेषों को खोज निकाला है।

इस सामंती व्यवस्था में जहां एक ओर अभिजात-वर्ग की निरंतर बढ़ती समृद्धता थी तो वहीं दूसरी ओर आम आदमी की उतनी ही निरंतरता से बढ़ती हुई गरीबी भी थी। ऋणों का भुगतान न कर पाने वाले लोगों की संख्या बढ़ती जा रही थी। दासों की संख्या का कुछ अनुमान उपरोक्त **थांग का नवीन इतिहास** से उद्धृत अवतरण से लगाया जा सकता है। दास जैसी स्थिति वाले अनेक शिल्पी और श्रमिक शाही महल और सरकारी निकायों से जोड़ दिए गए थे और बेगार करने के लिए बाध्य थे।

सामान्य कृषक **छोन** ***(ch'on)*** रूपी छोटी-छोटी पल्लियों (गांवों) में रहते थे। आमतौर पर एक पल्ली में लगभग दस सगोत्री कुटुंब होते थे जिन पर राज्य का पर्याप्त नियंत्रण था। प्रत्येक **छोन** की जनगणना का रजिस्टर रहता था जिसमें मुख्य रूप से बेगार श्रम सेवाओं को उगाहने के हिसाब से लोगों का वर्गीकरण किया जाता था। ऐसे कुछ वर्ग थे : छोटे बच्चे, तरुणावस्था से पहले और तरुणावस्था के बच्चे, सुगठित और समर्थ शरीर वाले पुरुष और स्त्रियां, बूढ़े लोग, इत्यादि। सिल्ला युगीन जनगणना का ऐसा ही एक रजिस्टर नारा (जापान) के शाही भण्डार में 1933 में मिला था। इस रजिस्टर में 755 ई. से छोंग्जू (Ch'ongju) के आसपास के चार **छोनों** की जनगणना के साक्ष्य मिलते हैं। इन दस्तावेज़ों में कृषि योग्य भूमि के वर्गीकरण का भी ब्यौरा मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि राज्यतंत्र, सरकारी अफ़सर और अभिजात वर्ग किस प्रकार कृषकों से अधिकाधिक धन-धान्य रूपी कर और बेगार वसूल करने में लगे रहते थे। **छोन** व्यवस्था के अतिरिक्त **ह्यांग** ***(Hyang)*****, सो** ***(so)*** और **पुगोक** ***(pugok)*** जैसी अनेक छोटी बस्तियां थी, जो विशेष रूप से केवल दासों के लिए ही थीं। ये बस्तियां सिल्ला साम्राज्य की विशेषता थीं और साम्राज्य के सभी हिस्सों में फैली हुई थीं।

(6)

हुई शाओ की डायरी के पन्नों से

यह तो सब जानते हैं कि पूर्वी एशिया के देशों से अनेक जिज्ञासु बौद्ध भिक्षु-यात्री समय-समय पर भारत आए थे। आठवीं शताब्दी में जब हुई शाओ कोरिया से भारत आया था, तब तक इस प्रकार की तीर्थयात्राओं के वृत्तांतों का अच्छा ख़ासा ख़ाका बन चुका था। फा-शियान, शुएन-त्सांग, इ-चिंग जैसे यात्रियों के वृत्तांतों की चर्चाएं हो रही थीं। कोरिया के अनेक बौद्ध भिक्षु न केवल उनसे परिचित थे बल्कि वॉनूह्यो और उइसांग जैसे दर्शनिक बौद्ध भिक्षुओं ने तो चीन जाकर शुएन-त्सांग से मिलने की भी योजना बनाई थी। इस प्रकार के वातावरण में **हुई शाओ की डायरी (वांगओ-शिओन-छुक-गुक-जियोन)** का कलेवर भी शुएन-त्सांग तथा इ-चिंग जैसे चीनी

यात्रियों के वृत्तांतों से बहुत भिन्न नहीं है। इसमें मुख्य रूप से उत्तर, उत्तर-पश्चिम भारत और मध्य एशिया के चालीस स्थलों/राज्यों/क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। कुछ किंवदंतियों और कुछ निजी अनुभवों के आधार पर हुई शाओ ने उन स्थलों, राज्यों आदि के जन-जीवन, भौगोलिक एवं पर्यावरणीय और भौतिक पृष्ठभूमि, राजनीतिक परिस्थितियों और संरचनाओं का वर्णन किया है।

उपरोक्त चीनी यात्रियों के समान हुई शाओ भी अपनी इस यात्रा के दौरान मुख्य रूप से बौद्ध धर्म की स्थिति में ही रुचि रखता था। इसीलिए जहां-जहां भी वह गया, उसने बौद्ध मठों, भिक्षुओं आदि के बारे में ही अधिक ध्यान दिया। शायद इसी वजह से ग़ैर-बौद्ध धर्म संबंधी धर्मिक विकासक्रम उसकी **डायरी** में लगभग अनुपस्थित ही है। अपवाद के रूप में वैशाली (क्रमांक 1) के नग्न विधर्मियों (संभवतः लोकायत और दिगंबर जैन अनुयायी), मध्य एशिया के छह देशों (क्रमांक 29 में वर्णित बोखारा, कपूताना, किश, शी-लो, माइमार्ग और समरकंद) के 'अग्नि' आराधकों; और मिथकीय ब्रह्मा एवं शक्र (इंद्र) [क्रमांक 5 में मध्य भारत के चार महान स्तूपों के संदर्भ में] के उल्लेखों को लिया जा सकता है। इसी संदर्भ में एक और रोचक पहलू यह भी है कि अरबों और तुर्कों के अनेक वर्णनों के बावजूद 'मुसलमानों' का क़ोई ज़िक्र नहीं है।

बौद्ध धर्म से संबंधित मठों का वर्णन कहीं-कहीं विशिष्ट नामों के साथ है तो कहीं मात्र सामान्य ज़िक्र ही काफी मान लिया गया। मध्य भारत के चार महान स्तूपों की गणना में श्रावस्ती में अनाथपिंडिक बाग (महाविहार—संभवतः बौद्ध ग्रंथों में वर्णित जेतवन); वैशाली में आम्रपालि बाग (महाविहार); महात्मा बुद्ध की जन्म स्थली कपिलवस्तु; दक्षिण भारत में 'बोधिसत्व नागार्जुन' के मठ (संभवतः नागार्जुन-कोण्ड का स्तूप); महात्मा बुद्ध द्वारा बुद्धत्व प्राप्ति के स्थान पर 'महाबोधि' मठ; वाराणसी (सारनाथ) का मृगदाय और 'धर्मचक्र संघाराम'; बुद्ध की निर्वाण स्थली कुशिनगर का मठ आदि विशेष रूप से उल्लिखित हैं। इसके अलावा जगह-जगह महायान और हीनयान संप्रदाय के भिक्षुओं के अस्तित्व का भी ब्यौरा पठनीय है।

हुई शाओ की डायरी में भारत में बौद्ध धर्म की वस्तुस्थिति के दो पक्ष विचारणीय हैं। पहला यह कि कोरियाई यात्री ने कुछ महत्त्वपूर्ण स्थलों पर मठों के ह्रास का वर्णन किया है। उदाहरणार्थ, दक्षिण भारत में उपरोक्त 'बोधिसत्व नागार्जुन' का मठ, जहां उस महान बौद्ध दार्शनिक के काल में 3000 भिक्षु रहते थे परंतु "उसके 700 वर्षों के बाद (संभवतः हुई शाओ की यात्रा के समय) उस स्थल का ह्रास आरंभ हो गया था।" कुशिनगर, वाराणसी, कपिलवस्तु के विध्वंस या उजाड़पन का भी साफ शब्दों में वर्णन किया गया है। वाराणसी (क्रमांक 3) के विवरण में एक काव्यात्मक

उल्लेख में आठों बौद्ध स्तूपों (इनके विस्तार के लिए देखिए इस **डायरी** के प्रस्तुत हिंदी अनुवादक की पाद टिप्पणी संख्या 24) के जलने का उल्लेख है।[4]

दूसरा विचारणीय पक्ष विस्मयकारी भी है। इसका संबंध तंत्रयान के वर्णन की पूर्ण अनुपस्थिति से है। हुई शाओ और उसके अनेक समकालीन बौद्ध भिक्षु बौद्ध तांत्रिक धर्म से परिचित थे। वे न केवल इस बौद्ध संप्रदाय के धर्म ग्रंथों का पठन-पाठन करते थे बल्कि उनके अनुवाद कार्य में भी जुटे थे। इस पृष्ठभूमि के बावजूद हुई शाओ ने नालंदा जैसे विख्यात मठ का, जहां तंत्रयान की अच्छी खासी साधना होती थी, ज़िक्र भी नहीं किया है। वास्तविकता तो यह है कि तंत्रयान का एक भी उल्लेख इस **डायरी** में नहीं मिलता।

डायरी का शायद सबसे सशक्त पक्ष अरबों और तुर्कों का उल्लेख है जो पूर्वी एशिया से आए अन्य यात्रियों के वृत्तांतों में और सामान्यतया इतने आरंभिक काल के ग़ैर-अरबी या ग़ैर-तुर्की स्रोतों में अक्सर नहीं मिलता। अरबों का विशेष उल्लेख एक अलग खंड (क्रमांक 27) में तो है ही। इसके अलावा पश्चिमी भारत (क्रमांक 7), सिंधुकुल (क्रमांक 11), तोख़ारिस्तान (क्रमांक 25), पर्शिया (क्रमांक 26), मध्य एशिया के छह देशों (क्रमांक 29), आदि के संदर्भों में भी अरबों के आधिपत्य के उल्लेख हैं। अरबों की व्यापार कुशलता और समतावादी दृष्टिकोण को हुई शाओ ने काफ़ी सराहा है।

जहां एक ओर अरबों द्वारा किए गए विध्वंस के वर्णन हैं वहीं दूसरी ओर अनेक स्थलों पर यह भी लिखा गया है कि राजा, उसके मुखिए और सामान्य जनता

---

4. डायरी के हिंदी अनुवादक ने अपनी पाद टिप्पणी संख्या 25 में यह विचार व्यक्त किया है कि बौद्ध मठों के विध्वंस का कारण हूणों के आक्रमण अथवा 'मुसलमान विजेताओं' का कोप था। यह मत उन्होंने कुछ विद्वानों की राय के आधार पर दिया है। इस संदर्भ में यह ध्यान देने की बात है कि हुई शाओ ने 'मुसलमानों' का कोई ज़िक्र नहीं किया है, हालांकि अरबों और तुर्कों के आक्रमणों से वह भली-भांति परिचित था। दूसरी बात यह है कि जिन क्षेत्रों में बौद्ध मठों के ह्रास या जलने का वर्णन किया गया है वहां तक तो अरब और तुर्क भी हुई शाओ के समय तक (आठवीं शताब्दी) नहीं पहुंचे थे। यह तर्क अनेक संबंधित क्षेत्रों में हूणों के प्रभाव के बारे में भी कही जा सकती है। यह भी ग़ौर करने लायक है कि बात केवल बौद्ध मंदिरों और मठों की ही नहीं है। पिछले लगभग 35 वर्षों में प्रकाशित ऐतिहासिक शोध रचनाओं में इस मुद्दे पर काफ़ी चर्चा हुई है कि लगभग संपूर्ण भारत में चौथी और आठवीं शताब्दियों के बीच अनेकों नगरीय बस्तियां (जिनमें बहुत-सी तो ग़ैर-धार्मिक थी) का ह्रास स्पष्ट दिखाई देता है। इस बात की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। इस विकास क्रम के कारकों में तत्कालीन समाज का सामंतीकरण भी शामिल है। प्रकारांतरवश यह याद दिलाना भी ज़रूरी है कि हुई शाओ ने स्वयं इस तथ्य को जगह-जगह लिखा है कि अरबों और तुर्कों ने बौद्ध धर्म को आदर प्रदान किया।

त्रि-रत्नों (बुद्ध, धम्म और संघ) का पर्याप्त आदर किया करते थे। ऐसी ही चर्चा तुर्कों के संदर्भ में भी हुई है। हुई शाओ की उपलब्ध **डायरी** में सामान्यतया किसी भी राजा का व्यक्ति विशेष नाम नहीं मिलता। गिने-चुने अपवादों में मगध के पूर्व नरेश शिलादित्य (संभवतः हर्षवर्धन--वाराणसी के विवरण में) और ज़ाबुलिस्तान के तुर्की मुखिए की गणना की जा सकती है। इस तुर्की मुखिए का नाम शा-तुओ-कान बताया गया है। यत्र-तत्र जब भी तुर्की राजा या तुर्की घुड़सवारों के राजनीतिक प्रभुत्व की बात की गई है (उदाहरणार्थ, गंधार और ज़ाबुलिस्तान के संदर्भ में--क्रमशः क्रमांक 18 और 23), तभी हम यह भी पढ़ते हैं कि वे त्रि-रत्नों का आदर करते थे।

हमने पिछले खंड में सिल्ला कालीन सामाजिक-राजनीतिक संरचना के संदर्भ में भूमि-दान पर आधारित सामंतवादी कुलीनतंत्र का वर्णन किया था। इस व्यवस्था में कृषकों, दासों और सामान्य जनता के शोषण के चिह्नों को भी पहचाना गया था। चूंकि हुई शाओ ऐसी भौतिक पृष्ठभूमि से आया था, अतः यह बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं कि वह भारत में इस प्रकार के चिह्नों को पहचानने में चूका नहीं। कुशिनगर (क्रमांक 2) स्थित बंधन (संभवतः मुकुट बंधन) नामक बौद्ध मठ को प्राप्त 'तीस से अधिक गांवों' का उल्लेख उसने स्पष्ट शब्दों में किया है। यद्यपि हुई शाओ ने कुछेक संदर्भों में (यथा वैशाली के विवरण में) दास प्रथा की अनुपस्थिति का वर्णन किया है[5] फिर भी अनेक स्थलों पर यह भी स्पष्ट लिखा है कि चंद लोग ही अमीर हैं जबकि गरीबों की संख्या बहुत है। कश्मीर (क्रमांक 14) के संबंध में निम्न विवरण विशेष रूप से विचारणीय है--

> "जहां कहीं भी मठ बनाया जाता है, वहां का गांव और उसके रहने वाले भेंट स्वरूप तत्काल त्रि-रत्न (उस मठ) को दान कर दिए जाते हैं। गांव और उसके निवासियों को दान में दिए बिना मठ नहीं बनाया जाता। इस देश [मेरे

---

5. लगभग 2300 वर्ष पूर्व यूनानी राजदूत मैगेस्थनीज़ के भारत आगमन के बाद अनेक विदेशी यात्रियों ने भारत में दास प्रथा की अनुपस्थिति के बारे में लिखा है। चूंकि हुई शाओ भारत में चार वर्ष से अधिक नहीं रहा और इस दौरान उसने संपूर्ण भारत का दौरा भी नहीं किया, इसलिए दास प्रथा संबंधी उसकी टिप्पणियों को अधिक गंभीरता से नहीं लिया जा सकता। मैगेस्थनीज़ के समान कोरियाई यात्री भी ऐसे समाज से आया था जहां दास प्रथा बहुत गहन, कठोर और निर्मम थी और उसी प्रकार की प्रथा उसे यहां न दिखाई दी हो। इन यात्रियों के स्वदेशी सामाजिक परिवेश में दासों का उपयोग सम्बन्धी गतिविधियों में काफ़ी क्रूरता से किया जाता था। आरम्भिक भारतीय समाज में इसकी कोई झलक नहीं मिलती। मैगेस्थनीज़ और हुई शाओ सरीके दासता संबंधी विवरणों के विश्लेषण और खंडन, तथा भारत में युगों-युगों में दास-प्रथा के बदलते स्वरूप के संबंध में विशद् साहित्य उपलब्ध है।

लिए विदेश] का यह प्रचलन है कि राजा और उसकी रानियों के अलग-अलग गांव और उसके निवासी (उनकी जागीर के रूप में) होते हैं। इसी तरह राजकुमारों और मुखियाओं के अपने गांव और उनके निवासी (उनकी अपनी जागीर) होते हैं, जिन्हें वे अपनी इच्छा से, राजा से पूछे बिना ही दान कर सकते हैं। यही बात मठ बनवाने के साथ भी लागू होती है। जब मठ बनवाने की ज़रुरत होती है तो वे वैसा ही करते हैं और राजा से नहीं पूछते। राजा भी इसके बीच में आने की हिम्मत नहीं करता, क्योंकि उसे डर रहता है कि ऐसा करना उसके लिए दुष्कृत्य के रूप में माना जाएगा।

''जहां तक सामान्य धनी जनों का प्रश्न है, जिनके पास दान में देने के लिए गांव नहीं होते, वे भी अपनी पूरी कोशिश करके आपस में मिलकर मठों का निर्माण कराते हैं और उसके प्रबंध की व्यवस्था भी स्वयं करते हैं। जब कभी भी उन्हें वस्तुएं प्राप्त होती हैं, तो उन्हें वे त्रि-रत्न (मठ) को भेंट कर देते हैं। चूंकि भारत के पांच क्षेत्रों में आदमी (दास बनाकर) बेचे नहीं जाते, अतः यहां दास नहीं होते। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता कि गांव और उसके निवासी (मठों को) दान में दिए जाए।''

ऐसा ही एक अन्य रोचक गद्यांश गंधार (क्रमांक 18) के संदर्भ में भी पढ़ने को मिलता है, जो इस प्रकार है :

''हालांकि राजा तुर्की मूल का है, लेकिन वह त्रि-रत्न में अत्यंत विश्वास रखता है और उनका आदर करता है। राजा, रानी, राजकुमार और उनके मुखियों ने अलग-अलग मठ बनवाए हैं और वे त्रि-रत्नों की पूजा करते हैं। राजा वर्ष में दो बार **वू-चे**[6] उत्सव का आयोजन कर प्रार्थना सभा बुलाता है और बहुत बड़ा भोज देता है। राजा को व्यक्तिगत तौर पर जो भी चीज़ें प्रिय हैं और जिन्हें वह उपयोग में लाता है, जैसे अपनी पत्नी (रानी), हाथी और घोड़े—इन सबको वह (बौद्ध संघ को) दान में दे देता है। फिर वह भिक्षुओं से रानी और हाथियों की कीमत निर्धारित करने के लिए कहता है। भिक्षु जितनी कीमत बताते हैं, उतनी ही कीमत चुका कर रानी (पत्नी) और हाथियों को वापिस ले लेता है। जहां तक दान में मिले ऊंटों, घोड़ों, सोने और चांदी के गहनों, कपड़ों तथा फर्नीचर का प्रश्न है, तो इन सबको भिक्षु बेच देते हैं और उससे

---

6. शुएन-त्सांग ने भी इसका प्रयोग किया है और उनके यात्रा वृत्तांत के पुराने अनुवादकों ने इसका अर्थ 'मोक्ष' के रूप में लिया है। परंतु अब अनेक चीनी इतिहासकार मानते हैं कि इसका शाब्दिक 'निर्बंध' होता है। इसलिए इस अभिव्यक्ति का अर्थ लगाया गया है : 'जहां किसी की भी उपस्थिति वर्जित नहीं है।'

> प्राप्त धन को अपने खर्चों के लिए आपस में बांट लेते हैं। ...राजा के बेटे और बेटियां भी राजा की तरह ही करते हैं। उन्होंने भी अलग-अलग मठ बनवाए हैं, वे भी भोज देते हैं, दान देते हैं।''

हुई शाओ द्वारा प्रस्तुत **वू-चे** उत्सव का यह वर्णन हमें चीनी यात्री शुएन-त्सांग के उस वर्णन की याद दिलाता है, जिसमें प्रयाग (आधुनिक इलाहाबाद) में होने वाली शिलादित्य (हर्षवर्धन) की पंचवर्षीय सभाओं का उल्लेख मिलता है। इन सभाओं में राजा शिलादित्य अपना सर्वस्व दान कर देता था।

अपनी यात्रा के दौरान हुई शाओ ने विभिन्न प्रकार के समुदायों के जन-जीवन को देखा और उनके रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषाई विशेषताओं एवं सामाजिक प्रथाओं पर टिप्पणियां की हैं। यदि अलग-अलग स्थलों/क्षेत्रों के उत्पादों का विस्तृत आकलन किया जाए तो निम्न वस्तुओं की गणना हो पाएगी :

(क) सूती और ऊनी कपड़े और गलीचे, रेशम की गांठ, पशुलोम

(ख) सोना, चांदी, तांबा, लौह

(ग) चावल, गेहूं, जौ, बाजरा, माष, मक्का, गन्ना और केसर। ऐसा भी लगता है कि अंगूर की खेती में हुई शाओ की विशेष दिलचस्पी थी (इस प्रकार के उल्लेख के लिए देखिए, क्रमांक 18 पर गंधार और क्रमांक 24 पर बामियान का वर्णन)

(घ) हाथी, घोड़े, ऊंट, भारतीय भैंसा, भेड़, गाय, गधे, खच्चर, याक

(ङ) पर्वत मालाओं के संबंध में लेखक अक्सर उनके क्षय और बंजर होने का वर्णन करते हुए कहता है कि वहां पेड़ तो क्या घास भी पैदा नहीं होती।

जन सामान्य के पहनावे में सूती कमीज़, ऊनी कंबल, जूते, पतलून (पायजामा), पशुलोम का उल्लेख काफ़ी हुआ है। उत्तर-पश्चिमी भारत और पर्वतीय क्षेत्रों में पुरुषों और स्त्रियों की समान वेश-भूषा की भी चर्चा है परंतु आभूषणों का वर्णन नहीं मिलता। खान-पान के रूप में उपरोक्त अनाजों, प्याज़, गंदना (प्याज़ की जाति का कंद), भुने हुए अन्न, पेस्ट्री (संभवतः चावल, जौ या गेहूं से बना कोई पकवान या रोटी) और मांस भक्षण (कहीं-कहीं यह प्रथा नहीं थी—देखिए क्रमांक 4, 38 और 39) के अलावा एक रोचक प्रसंग तिब्बत निवासियों की आदतों का भी है। चूंकि वे लोग लीखों और जूंओं से भरे ऊनी कपड़े पहनते थे इसलिए उन्हें लीखें और जूंएं खाने में भी कोई दिक्कत नहीं होती थी। सिंधुकुल (क्रमांक 11) वासी ऊंट के दूध और उससे बने मक्खन का तो पर्याप्त सेवन करते थे परंतु मद्यपान, दावतों, नृत्य और नाटकों में संयम बरतते थे। अरबों के संबंध में हुई शाओ ने लिखा—

> ''जब वे खाने के लिए बैठते हैं तो अभिजात वर्गी और आम आदमी में कोई फ़र्क नहीं करते और सभी एक ही थाली में से अपने हाथों से खाते हैं। चम्मच और सींख (कांटे) का भी प्रयोग करते हैं। बनी-बनाई तैयार चीज़ें लेना वे

बेहद नापसंद करते हैं। उनका कहना है कि मांस खाना है तो पशु को अपने हाथ से ही काटना चाहिए। ऐसा करना बहुत सौभाग्यशाली होता है।''

लोगों की भाषाओं का वर्णन करने में हुई शाओ ने काफी संवेदनशीलता दिखाई है। भारत के पांच क्षेत्रों के निवासियों की वेश-भूषा, प्रथाओं और कानूनों को समान बताते हुए भी दक्षिण भारत के ग्रामवासियों की भाषा को अलग बताया गया है; कपिशा (क्रमांक 22) की भाषा की साम्यता तोख़ारिस्तान (क्रमांक 25) की भाषा से की है; बामियान (क्रमांक 24) की बोलियों को अन्य देशों की बोलियों से भिन्न बताया गया है; और फ़रग़ाना के पूर्व में स्थित खुत्तल (क्रमांक 31) के निवासियों में एक-तिहाई तोख़ारी, एक-तिहाई तुर्की और शेष एक-तिहाई स्थानीय बोली बोलने वाले बताए गए हैं। ऐसे विवरणों के बावजूद यह ग़ौर करने की बात है कि हुई शाओ ने किसी भी भारतीय भाषा का नाम नहीं दिया है।

डायरी में वर्णित जगह-जगह की सामाजिक प्रथाओं में से मध्य एशिया के छह देशों (क्रमांक 29) का निम्न उल्लेख विशेष रूप से आकर्षित करता है—

> ''इन देशों के निवासियों की एक बहुत बुरी प्रथा कौटुंबिक व्यभिचारपूर्ण (कुटुंब के सगे-संबंधियों के बीच मैथुन संबंध) शादियों की है। इस प्रथा की वजह से कोई भी व्यक्ति अपनी सगी मां या बहन को भी पत्नी बना सकता है। पर्शिया के लोग भी अपनी माताओं को पत्नियों के रूप में अपनाते हैं। तोखारिस्तान, कपिशा, बामियान और ज़ाबुलिस्तान जैसे देशों में दो, तीन, पांच अथवा यहां तक कि दस भाई भी मिलकर एक ही औरत से शादी कर उसे अपनी पत्नी बनाते हैं। भाइयों को अलग-अलग शादी करने की अनुमति नहीं हैं क्योंकि उन्हें भय रहता है कि ऐसा करने से उनकी जीविका के साधन बरबाद हो जाएंगे।''[7]

हुई शाओ के यात्रा वृत्तांत में तिथियों और काल-क्रम की अनुपस्थिति खटकती है। अप्रत्यक्ष रूप से जहां-जहां काल गणना के चिह्न मिलते हैं, उनके परिप्रेक्ष्य में ऐसा लगता है कि शायद कोरियाई यात्री चीनी इतिहास लेखन की लंबी परंपरा से बहुत ज़्यादा परिचित नहीं था। इस परंपरा में तिथि-क्रम पर अच्छा ख़ासा बल होता था। हुई शाओ आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में (संभवतः 720 के दशक में) भारत

---

7. इस प्रकार के बहु-पति विवाह का पुराना उदाहरण तो संस्कृत महाकाव्य *महाभारत* में वर्णित द्रौपदी और पांच पांडवों के विवाह का है। परंतु आज भी भारत में पंजाब, राजस्थान और हरियाणा राज्यों में एक ही औरत का एक से अधिक सगे भाइयों के साथ विवाह की प्रथा है, जिसका मुख्य कारण संपत्ति, ख़ासकर कृषि योग्य भूमि, के बंटवारे से बचना है।

के पांच क्षेत्रों की तीर्थयात्रा पर निकला था। इसको आधार मानकर अप्रत्यक्ष काल-गणना के प्रसंगों का विश्लेषण उपयोगी रहेगा। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, दक्षिण भारत (क्रमांक 6) के संदर्भ में इसी तीर्थयात्री ने 'बोधिसत्व नागार्जुन' के '700 वर्षों के बाद' (इसे हुई शाओ की भारत में मौजूदगी का काल समझना चाहिए) उनके आदेश पर बने मठ का पतन आरंभ होने की बात कही है। सामान्यतया नागार्जुन का काल दूसरी ई. शताब्दी का उत्तरार्द्ध या उसके बाद माना जाता है। यदि इसमें 700 वर्षों का योग करें तो वह लगभग 900 ई. या उसके बाद का समय बनेगा। स्पष्ट है कि इस संदर्भ में हुई शाओ का 700 वर्षों का उल्लेख कुछ ठीक नहीं बैठता। इसके विपरीत तिब्बत (क्रमांक 16) के संदर्भ में एक ऐसा विवरण है जो इस यात्री के पक्ष में जाता है। उसके अनुसार तिब्बत का राजा और वहां के आम आदमी बौद्ध धर्म से परिचित नहीं थे और वहां कोई बौद्ध मठ भी नहीं था। यह उचित ही लगता है क्योंकि तिब्बत में बौद्ध धर्म का असली पदार्पण वहां के राजा ख्री-स्रॉन-दे-त्सान के काल, अर्थात् आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में तांत्रिक बौद्ध आचार्य पद्मसंभव की गतिविधियों से ही संभव हो पाया था।

अपनी यात्रा के अंतिम चरण में शिह-नी के नौ राज्यों (वर्तमान गिलगित के उत्तर-पश्चिम का क्षेत्र) और उसके पूर्व के क्षेत्रों यथा काशगर, कूचा, खोतान, अन-सी के मठ और वू-चिह (क्रमांक 34-40) में चीन के महान थांग साम्राज्य के प्रभाव और प्रभुत्व का उल्लेख करते हुए, हुइ शाओ उसे सर्वविदित तथ्य मानता है और इस स्थिति की अधिक व्याख्या करना ज़रूरी नहीं समझता।

कुल मिलाकर अपनी खामियों और नैसर्गिक सीमाओं के बावजूद, हुई शाओ की **डायरी** एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज़ है, जो आठवीं शताब्दीय भारतीय उपमहाद्वीप और उसके निकटवर्ती उत्तर एवं उत्तर-पश्चिमी भौगोलिक क्षेत्रों और मध्य एशिया के जन-जीवन पर अत्यन्त रोचक प्रकाश डालता है।

8 दिसंबर, 2006

प्रो. कृष्ण मोहन श्रीमाली
प्रोफेसर
इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

भाग-1

बौद्ध तीर्थयात्री

फाहियान

सर्वप्रथम चीनी यात्री, जो अपनी यात्रा का विवरण लिखित रूप से छोड़ गया, वह था बौद्ध भिक्षु फाहियान। उसने मध्य एशिया, भारत और श्रीलंका की यात्रा की और उसका विवरण लिखा। फाहियान शानसी का मूल निवासी था, बौद्ध संघ में शामिल होने के लिए तीन साल की उम्र में ही उसने अपना घर छोड़ दिया था। बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद *विनयपिटक,* बौद्ध मठों के नियमों के ग्रंथ को खोजने के लिए भारत जाने की उसकी इच्छा बलवती होती गई। संभवतः पच्चीस वर्ष की आयु में उसने ईस्वी सन् 399 में भारत के लिए प्रस्थान किया। दस्तावेजी विवरण के अनुसार–

> *फाहियान छांग आन में रहता था। बौद्ध अनुशासन के नियमों के संकलन ग्रंथ (विनयपिटक) की छिन्न-भिन्न, बिखरी हुई और अपूर्ण स्थिति से खिन्न होते हुए फाहियान ने ह्वांग छ काल के दूसरे वर्ष, चक्रीय क्रम में के हेई वर्ष (ईस्वी सन् 399) में अपने साथियों ह्वेइ चिंग, ताओ यिंग, ह्वेइ यिंग और ह्वेइ वेइ के साथ मिलकर तय किया कि वे विनयपिटक को प्राप्त करने के लिए भारत जाएंगे।*[1]

फाहियान ने भारत पहुंचने के लिए मध्य एशिया के रेगिस्तान तथा पामीर और हिंदूकुश पर्वतों के दर्रों से होकर गुजरने की खतरनाक यात्रा की। इस यात्रा के लिए अत्यंत साहस और दृढ़ निश्चय की आवश्यकता थी, जिसका परिचय फाहियान ने बार-बार इस समूची यात्रा के दौरान दिया। फाहियान ने लिखा है कि रेगिस्तान में–

1. जेम्स लेगी : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडमूस,* ऑक्सफर्ड, 1886, पेज 9-10

... यहां अनेक दुष्ट आत्माएं (रहती हैं) और तपती गर्म हवाएं (बहती) हैं। (यात्री) जो भी इनका मुकाबला करता है, वे उन सबको नष्ट कर देती हैं, आदमी तक को। यहां न तो ऊपर हवा में उड़ता एक भी पक्षी दिखाई देगा और न नीचे जमीन पर एक भी पशु। हालांकि, तुम चारों ओर बेहद आतुरता से तलाशने की कोशिश करोगे कि किधर से होकर निकला जाए लेकिन तुम रास्ता नहीं तलाश पाओगे, रास्ते का संकेत केवल मरे हुए (पशुओं और आदमियों) की सूखी हुई हड्डियां होंगी (जो रेत पर बिखरी पड़ी होंगी)।[2]

फाहियान ने उत्तर-भारत की यात्रा की। गंगा नदी की घाटी में स्थित बौद्ध स्थलों को देखा। कपिलवस्तु, बुद्ध का जन्म स्थान; बोध गया, बुद्ध के बोधत्व-प्राप्ति का स्थान; सारनाथ, बुद्ध ने जहां अपना प्रथम उपदेश दिया; तथा कुशीनगर, बुद्ध का परिनिर्वाण स्थल–ये उन स्थानों में हैं, जिन्हें फाहियान और दूसरे अन्य तीर्थयात्रियों ने देखे और इनका विवरण लिखा है। अन्य तीर्थयात्रियों के विवरणों में भारत के अधिकांश भाग तथा मध्य एशिया के देश, जहां की उन्होंने यात्राएं की हैं, के उल्लेख हैं। फाहियान ने हालांकि समूचे मध्य एशिया और उत्तर-पश्चिम भारत की यात्रा की, लेकिन उसने अपना अधिकांश समय मध्य भारत अर्थात् मगध, बुद्ध के गृह-प्रदेश को देखने और उसके विवरण लिखने में ही लगाया। उसने दक्षिण भारत की यात्रा नहीं की। वह भारत से समुद्री मार्ग द्वारा चीन लौटा। चीन लौटते समय समुद्री यात्रा के दौरान उसने किसी तरह श्रीलंका को देखा और उसका विवरण लिखा। फाहियान द्वारा श्रीलंका का लिखा गया विवरण ही एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी विवरण है, जो बौद्ध धर्म के इस महत्वपूर्ण द्वीप के बारे में किसी चीनी बौद्ध तीर्थयात्री द्वारा लिखा गया है। फाहियान समुद्री यात्रा की अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए ईस्वी सन् 414 में चीन वापस पहुंचा। एक स्थान पर तो उसे भयंकर समुद्री तूफान का सामना करना पड़ा तथा एक बार उसे उसी जहाज, जिस पर वह यात्रा कर रहा था, के नाविकों द्वारा उठाकर समुद्र में फेंक दिए जाने तक का खतरा पैदा हो गया। फाहियान की यात्रा को सार रूप में निम्नलिखित प्रकार से कहा जा सकता है–

छांग आन से रवाना होने के बाद फाहियान को भारत पहुंचने में छह साल लगे, वहां ठहरने में उसे दूसरे छह साल और लगे तथा लौटने और छिंग

---

2. जेम्स लेगी : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स,* ऑक्सफर्ड, 1886, पेज 12

चओ पहुंचने में उसे तीन साल लगे। जिन देशों से होकर वह गुजरा उनकी संख्या तीस से कुछ ही कम है। रेतीले उजाड़ क्षेत्र के पश्चिम की ओर, भारत के रास्ते के देशों में, बौद्ध भिक्षुओं के गरिमापूर्ण आचरण और अनुशासन के नियमों द्वारा लाए गए परिवर्तनकारी प्रभाव को पूर्णरूप से वर्णित करना शब्दों की शक्ति के परे है। इससे यह भी पता चलता है कि हमारे बौद्ध आचार्य ने इनके बारे में सुना ही नहीं है। इसलिए वह अपने अकिंचन जीवन (या आने वाले खतरों) की परवाह न करते हुए (भारत की यात्रा पर) गया और समुद्री मार्ग से लौटा—इस तरह उसने दोहरी कठिनाई और कष्ट सहे। वह बहुत सौभाग्यशाली था कि उसे त्रि-रत्नों की अपरिमित शक्ति की सहायता मिली जिससे वह बार-बार मृत्यु से बच सका, और तभी वह अपने अनुभवों का विवरण लिख सका, ताकि सहृदय पाठकगण, जो कुछ उसने सुना और कहा है, उस विवरण में से अपना भाग (जानकारियां) प्राप्त कर सकें।[3]

3. जेम्स लेगी : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स*, ऑक्सफर्ड, 1886, पेज 115-116

सुंग य्विन और ह्वेइ शंग

सुंग य्विन और ह्वेइ शंग को सन् 518 में चीन की महारानी डोवागेर (छशी) ता हाओ द्वारा पश्चिमी देशों के लिए अपना राजदूत बनाकर भेजा गया। महारानी ता हाओ उस तथाकथित महान वेइ वंश की थी, जो उन आक्रमणकारियों का था, जिन्हें तओ-पा के नाम से जाना जाता था। इन दोनों तीर्थयात्रियों का उद्देश्य बौद्ध धर्म के ग्रंथों को प्राप्त करके चीन लाना था और ये दोनों अपने साथ बौद्ध धर्म की महायान शाखा के 170 ग्रंथ लेकर लौटे। सुंग य्विन को इस अभियान के लिए संभवतः इसलिए सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया कि वह तुन ह्वांग का मूल निवासी था। तुन ह्वांग चीन के मध्य एशियाई सीमांत पर स्थित था और मध्य एशिया से होकर आने वाले दक्षिणवर्ती व्यापारिक मार्ग का अंतिम पड़ाव था। संभवतः इसी कारण सुंग य्विन ने इस दक्षिणवर्ती मार्ग से खोतान होते हुए भारत के ओर की यात्रा की।

सुंग य्विन और ह्वेइ शंग मध्य भारत की यात्रा नहीं कर पाए, वे केवल गंधार तक पहुंचे, जो वर्तमान पेशावर के पास है। ये दोनों तीर्थयात्री जब उद्यान, आज की स्वात घाटी के समीप, पहुंचे तो उनका भलीभांति स्वागत-सत्कार किया गया। इस बारे में उन्होंने लिखा है—

इस देश के राजा ने सुंग य्विन को देखकर (उसका सम्मान करते हुए उसका हालचाल पूछा और...) उसे यह बताए जाने पर कि वे दोनों महान वेइ राजवंश के राजदूत हैं, उसने शिष्टाचारपूर्वक उनका परिचय-पत्र ग्रहण किया। और यह जानकर कि महारानी छशी बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धावान हैं, उसने तत्काल अपने चेहरे को पूर्व दिशा की ओर घुमाया, हाथ जोड़कर ध्यान मग्न होते हुए अपने सिर को झुकाया और फिर उसने एक आदमी

को बुला भेजा जो दुभाषिए का कार्य कर सके। राजा ने सुंग य्विन से प्रश्न करते हुए कहा, 'क्या मेरे सम्माननीय आगंतुक सूर्योदय के देश से हैं?' सुंग य्विन ने उत्तर दिया और कहा, 'हमारा देश पूर्व दिशा में महान सागर से सीमाबद्ध है, इसलिए दैवी इच्छा (तथागत के अनुशासन) के अनुसार वहां से सूर्य का उदय होता है।'[4]

इसी तरह सुंग य्विन और हूवेइ शंग को गंधार में भी स्वागत-सत्कार मिला, लेकिन वह इतना गर्मजोशी भरा नहीं था। जब वे गंधार के राजा से मिले–

सुंग य्विन जब राजकीय शिविर में अपना परिचय-पत्र देने के लिए पहुंचा तो वहां का राजा उसके प्रति अशिष्ट रहा, उसने उसका अभिवादन तक नहीं किया। परिचय-पत्र लेते समय भी वह बैठा रहा (उठा नहीं)। सुंग य्विन ने समझ लिया कि दूर-दराज के ये बर्बर लोग अपने सार्वजनिक दायित्व को निभाना भी नहीं जानते, उनकी अहमन्यता उन्हें ऐसा करने से रोकती है।[5]

जिस समय सुंग य्विन ने यात्रा की भारत का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र राजनीतिक अराजकता के दौर से गुजर रहा था। इसी कारण से वे सिंधु नदी पार कर बौद्ध तीर्थस्थलों की ओर नहीं जा सके। उनकी यात्रा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म के ग्रंथों को प्राप्त करना था, जो पूरा हो गया था अतः वे सन् 521 में चीन लौट आए।

---

4. सेमुअल बील : *सी-यू-की, बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड*, लंदन, 1884
5. उपरोक्त

ह्वान सांग

धर्माचार्य ह्वान सांग चीन के प्रख्यात बौद्ध तीर्थयात्रियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है। उसका जन्म सन् 603 में हनान में हुआ था। प्रारंभिक जीवन में ही उसने अपनी बौद्धिक प्रखरता और आध्यात्मिक श्रेष्ठता के लक्षण प्रदर्शित कर दिए थे। ह्वान सांग का जीवनी लेखकं ह्वेइ ली लिखता है—

> *... यहां तक कि ग्यारह वर्ष की उम्र में ही वह चीन के पवित्र ग्रंथों (चीनी क्लासिक्स) को पढ़ने लगा था और वह प्राचीन दार्शनिक संतों के लेखन से प्रभावित था। कुरुचि और मर्यादाहीन पुस्तकों की तरफ वह देखता तक नहीं था तथा जो लोग विद्वानों का विरोध करते थे, उनसे बात तक नहीं करता था।*[6]

ह्वान सांग ने प्रारंभिक अवस्था में ही अपना घर छोड़ दिया था और जब वह ल्वो यांग शहर में था, तब तेरह वर्ष की आयु में ही वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया था। ह्वेइ ली इस बारे में लिखता है—

> *उसका दूसरे नंबर का बड़ा भाई चांग-त्सी उससे पहले ही बौद्ध अनुयायी (बौद्ध भिक्षु) बन चुका था और (इसी शहर) ल्वो यांग के चिंग-तू मठ में रह रहा था। बड़े भाई ने यह देखकर कि ह्वान सांग धार्मिक सिद्धांतों (कन्फ्यूशियस धर्म) का बड़ी गहराई से अध्ययन कर रहा है, उसे अपने मठ में ले गया और उसे (बौद्ध धर्म के) पवित्र ग्रंथों के अध्ययन की विधि तथा (बौद्ध अनुशासन की) व्यावहारिक शिक्षा दी।*[7]

---

6. सेमुअल बील : द *लाइफ ऑव ह्वान सांग,* लंदन, 1911, पेज 2-3
7. उपरोक्त, पेज 3

उसी दौरान स्वेइ राजवंश के पतन से फैली राजनीतिक एवं सामाजिक अराजकता के कारण ह्वान सांग सू छ्वान के सिंग-तू मठ में चला गया, जहां वह बीस वर्ष की आयु में ही उपसंपन्न हुआ। यहां से उसने पवित्र बौद्ध ग्रंथों के ज्ञान की खोज में समूचे चीन की यात्रा की। काफी समय बाद वह छांग आन आया। तब तक थांग सम्राट ताइ त्सुंग के अधीन शांतिपूर्ण शासन व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। भारत की यात्रा पर जाने की उसकी इच्छा यहीं जागृत हुई। ह्वेइ ली लिखता है–

> *ह्वांग सांग चीन के समस्त प्रतिष्ठित बौद्ध आचार्यों के पास गए। उनके उपदेशों को ध्यान से सुना और उनके सिद्धांतों की खोज-परख की तो पाया कि हरेक आचार्य अपने मतानुसार शिक्षा दे रहा है। उनके सिद्धांतों का परस्पर मिलान करने पर उसने पाया कि उनमें काफी भिन्नता है, जिसके कारण वह यह तय नहीं कर पाया कि वह किसका अनुसरण करे। तब उसने निश्चय किया कि इन संदेहास्पद अंशों के स्पष्टीकरण हेतु वह पश्चिमी जगत की यात्रा करेगा।*[8]

फाहियान उसके सामने उदाहरण के रूप में था ही। फाहियान की तरह उसका सरोकार भी चीन में पहुंचे बौद्ध ग्रंथों की अपूर्णता तथा उनकी भ्रामकता से था। ह्वान सांग के यात्रा-वृत्तांत की चांग य्वे द्वारा लिखी भूमिका के अनुसार बौद्ध ग्रंथों की अपूर्णता तथा भ्रामकता के बारे में सभी चीनी तीर्थयात्रियों का विचार एक जैसा ही था, जैसा कि उसने लिखा है–

> *बौद्ध धर्म का आर्विभाव पश्चिम में हुआ, जब उसका प्रसार पूर्व दिशा के देशों में हुआ तो अनुवाद के समय शब्दों के अशुद्ध उच्चारण के कारण बुद्ध वचन अशुद्ध हो गए। फिर विभिन्न स्थानीय बोलियों के प्रभाव से ये अशुद्ध उच्चारण और भी अधिक भ्रष्ट व भ्रामक हो गए।*
> *अशुद्ध उच्चारण से वाक्यांशों के अर्थ गलत निकाल लिये गए हैं। इस प्रकार (सही) अर्थ खो गए हैं। शब्द के गलत होने से, उसका मूल विचार ही भ्रष्ट हो गया है।*[9]

---

8. सेमुअल बील : *द लाइफ ऑव ह्वान सांग,* लंदन, 1911, पेज 10
9. उपरोक्त, *सी-यू-की,* पेज 15

ह्वान सांग ने हमारे लिए जो अपना यात्रा-वृत्तांत छोड़ा है, वह किसी भी दूसरे चीनी तीर्थयात्री के भारत व मध्य एशिया के यात्रा-वृत्तांत से विशद् एवं विस्तृत है। ह्वान सांग का उद्देश्य भी बौद्ध ग्रंथों को प्राप्त करना और भारत में रहते हुए बौद्धानुशासन के दिशा-निर्देश प्राप्त करना था, लेकिन उसने इससे कहीं अधिक ही किया, जैसा कि उसके यात्रा-वृत्तांत की भूमिका में चांग य्वै ने लिखा है–

> *... उसने धर्म के सिद्धांतों की खोज में सुदूर देश भारत की यात्रा की। इसके बाद उसने जिन देशों की यात्रा की, उनकी चारित्रिक विशेषताओं को अपने अवकाश के क्षणों में लिपिबद्ध कर संरक्षित किया।*[10]

ह्वान सांग ने संस्कृत में लिखे बौद्ध ग्रंथों को प्राप्त कर 657 ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसके साथ ही समूचे भारत भर में उसे जो श्रेष्ठतम (व्यावहारिक) निर्देश प्राप्त हो सकते थे, वह प्राप्त किए। उसके इस कार्य-व्यवहार की सविस्तृत जानकारी उसके यात्रा-वृत्तांत–महान थांग राजवंश के शासनकाल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत तथा ह्वेइ लि द्वारा लिखित उसकी जीवनी में उल्लिखित है। फिर भी ह्वान सांग ने जैसा अपने यात्रा-वृत्तांत में लिखा है, उसे चांग य्वै ने अपनी भूमिका में इस प्रकार कहा है–

> *....दूर देशों के विभिन्न तौर-तरीकों को, अलग-अलग लोगों के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजों को, भूमि की विविध पैदावारों को तथा वहां के लोगों के वर्ग विभेद को, उन क्षेत्रों को जहां उसे राजकीय स्वागत-सत्कार मिला तथा जहां उसने (बौद्ध धर्म की) नैतिक शिक्षाओं की गूंज सुनी–इन सबको उसने गहराई से देखते-परखते हुए अपने इस यात्रा-वृत्तांत*–महान थांग राजवंश के शासनकाल में पश्चिम की तीर्थ यात्रा का वृत्तांत *बारह खंडों में लिखा।*[11]

ह्वान सांग ईस्वी सन् 629 में चीन से चला। उत्तरी व्यापारिक मार्ग द्वारा मध्य एशिया को पार कर कूचा होते हुए वह उत्तरी भारत पहुंचा, जहां वह महान भारतीय सम्राट का, उसकी राजधानी कान्यकुब्ज (कन्नौज) में, अतिथि रहा। उसने मगध राज्य क्षेत्र में स्थित पवित्र बौद्ध स्थलों को देखा और अपना अधिकतर

---

10. सेमुअल बील : *द लाइफ ऑव ह्वान सांग,* लंदन, 1911, पेज 16
11. उपरोक्त, पेज 6

समय प्रसिद्ध नालंदा बौद्ध महाविहार में, जो उस समय बौद्ध शिक्षा का महान केंद्र था, अध्ययन करने में लगाया। इसके बाद दक्षिण और पश्चिम भारत की यात्रा की और फिर मध्य एशिया के रास्ते से होते हुए चीन लौटा। इस बार उसने खोतान होते हुए दक्षिणवर्ती व्यापारिक मार्ग से यात्रा की। ह्वान सांग ने जिन देशों की यात्रा की उन सभी का सविस्तार विवरण लिखा है। उसने उन देशों के बारे में भी जानकारियां दी हैं जिनके बारे में उसने केवल सुना था। उदाहरण के लिए श्रीलंका के बारे में जो सुना, उसे भी लिखा है, जबकि वह श्रीलंका नहीं गया था। ह्वान सांग ईस्वी सन् 645 में चीन लौटा। चीन लौटने पर उनका बहुत स्वागत-सम्मान किया गया। सम्राट ताइ त्सुंग द्वारा अनेक उच्च शासकीय पदों पर नियुक्तियों के प्रस्ताव को स्वीकारने से उसने इनकार कर दिया। ह्वान सांग एक बौद्ध मठ में रहता हुआ सन् 664 में मृत्युपर्यंत बौद्ध ग्रंथों के चीनी अनुवाद कार्य में समर्पित भाव से लगा रहा।

इत्सिंग

ह्वान सांग से अगला बौद्ध तीर्थयात्री जिसने भारत की यात्रा की और अपनी यात्रा का विवरण लिखा, वह था इत्सिंग। इत्सिंग का जन्म वर्तमान पेइचिंग के पास, उस समय हुआ था जब ह्वान सांग भारत में था। जब वह सात साल का था तभी उसे पंथनिरपेक्ष शिक्षा *(कन्फ्यूशियस व ताओ की शिक्षा)* दी जाने लगी थी। जब वह बारह वर्ष का ही हुआ था कि उसके शिक्षक की मृत्यु हो गई। उस समय के बारे में इत्सिंग हमें बताता है—

> *पंथनिरपेक्ष साहित्य के अध्ययन को छोड़कर मैंने स्वयं को पवित्र (बौद्ध धर्म के) सिद्धांतों के अध्ययन के प्रति समर्पित कर दिया। चौदह साल की उम्र में (सन् 648) मैंने बौद्ध धर्म में प्रव्रज्या ली और अठारह साल की उम्र (सन् 652) में मैंने भारत की यात्रा पर जाने का विचार बनाया, जो मेरी 37 वर्ष की आयु (सन् 671) तक कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका।*[12]

सन् 654 में बौद्ध धर्म में उपसंपदा प्राप्त करने के बाद इत्सिंग ने *विनय पिटक* के अध्ययन में पांच साल लगाए। इत्सिंग की मुख्य रूप से अभिरुचि बौद्ध अनुशासन के नियम (*विनयपिटक*) के अध्ययन में थी और यही उसके लेखन का मुख्य विषय रहा। उसने अभिधर्म साहित्य के अध्ययन में अनेक वर्ष लगाए। जब उसने भारत की यात्रा पर जाने का विचार बनाया उस समय वह फाहियान की यात्रा से परिचित था और अभी हाल ही के *(भारत की यात्रा से लौटे)* तीर्थ यात्री ह्वान सांग का उदाहरण भी उसके सामने था। इत्सिंग और ह्वान सांग

12. जे. तकाकुसु : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्ट रिलीजन,* ऑक्सफर्ड, 1896, पेज 204

वस्तुतः समकालीन थे। सन् 664 में जब ह्वान सांग का देहावसान हुआ, उस समय इत्सिंग छांग आन के मठ में ही था।

इत्सिंग ने भारत के लिए चीन के केंटन बंदरगाह से समुद्री मार्ग द्वारा यात्रा आरंभ की और सन् 673 में वह भारत पहुंचा। मगध राज्य क्षेत्र में स्थित पवित्र बौद्ध स्थलों की यात्रा करने के बाद, दस साल (सन् 676-685) वह महान नालंदा बौद्ध महाविहार में रहा, जहां उसने *विनयपिटक* के अध्ययन में अपना पूरा समय लगाया। वह सन् 685 में भारत से वापसी में भोज के लिए रवाना हुआ। भोज संभवतः सुमात्रा द्वीप पर स्थित नगर था, जो उस समय भारतीय संस्कृति के प्रभाव में था। भोज नगर में उसने स्वयं को संस्कृत भाषा में लिखे बौद्ध धर्म के मूल ग्रंथों के चीनी भाषा में अनुवाद करने के कार्य में लगा दिया, जिनमें मूल सर्वास्तिवादी शाखा के *विनयपिटक* का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय था। सन् 689 में अनुवाद कार्य में सहायकों की खोज में वह चीन गया और फिर भोज के लिए लौट पड़ा, जहां वह पांच साल तक और रहा। सन् 695 में वह चीन में बौद्ध धर्म की प्रख्यात संरक्षक महारानी वू के राज्यकाल में वापस चीन लौटा। लौटने पर उसे बहुत मान-सम्मान मिला, लेकिन उसने भी अपने पूर्ववर्ती फाहियान और ह्वान सांग की भांति अपने जीवन के शेष वर्ष बौद्ध धर्मग्रंथों के अनुवाद कार्य को समर्पित कर दिए। 79 वर्ष की आयु में उसका निधन सन् 713 में सम्राट चुंग त्सुंग के राज्यकाल में हुआ।

अपने अनुवाद ग्रंथों के अतिरिक्त इत्सिंग ने दो महत्वपूर्ण ग्रंथ और लिखे हैं। एक, चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों की संक्षिप्त जीवनियों की एक श्रृंखला, जो उसे भारत में मिले या जिनके बारे में उसने सुना। यह श्रृंखला उन बहुत से बौद्ध तीर्थयात्रियों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी देती है, जो भारत आए, लेकिन अपने बारे में कोई विवरण नहीं छोड़ गए। दूसरी, उसकी मुख्य कृति दक्षिणी समुद्र से घर भेजा गया बौद्ध धर्म का एक विवरण। यह चीनी तीर्थयात्रियों के यात्रा-विवरणों के बीच एक अनूठी कृति है और यह संभवतः इसलिए कि ह्वान सांग के विशद् यात्रा-विवरण की तरह इत्सिंग ने भारत का वर्णन करने का प्रयास नहीं किया। इत्सिंग का यात्रा-विवरण अपने आप में बहुत सीमित है, लेकिन वह भारत में प्रचलित बौद्ध व्यवहारों एवं आचरणों का सविस्तार वर्णन करता, जिन्हें वह *विनयपिटक* की परंपरागत रूढ़ व्याख्या मानता है, जैसा कि उसने लिखा है—

पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही कुछ भ्रामक व्याख्याओं के कारण विनयपिटक *के अनुशासनात्मक नियमों को क्षति पहुंची है और वह त्रुटियां बराबर दोहराई जाने से रूढ़ि बन गईं, जो मूल सिद्धांतों के नितांत विपरीत हैं। इसलिए नीतिवान श्रेष्ठ शिक्षा और मूल प्रथाएं, जो अपने वास्तविक रूप से भारत में प्रचलित हैं, उन्हें मैंने सावधानीपूर्वक अपने अगले लेखों में लिखा है, जो संख्या में चालीस हैं और जिन्हें चार खंडों में विभाजित किया गया है।*[13]

---

13. जे. तकाकुसु : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्ट रिलीजन,* ऑक्सफर्ड, 1896, पेज 18

हे चो

पॉल पेलिओट द्वारा सन् 1908 में तुन ह्वांग की गुफा से हे चो की *भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थयात्रा के संस्मरण* की पांडुलिपि के, जो अधूरी है, खोजे जाने के बाद से हे चो के व्यक्तित्व और कृतित्व के अध्ययन के अनेक प्रयास हुए हैं। यद्यपि अध्ययनकर्ता कुछ निष्कर्ष निकाल चुके हैं लेकिन अभी बहुत से बिंदुओं पर लिखा जाना तथा विचार-विमर्श शेष है। उनके इस आधारभूत प्रारंभिक शोध से हम कोरिया के इस प्रख्यात बौद्ध भिक्षु एवं तीर्थयात्री हे चो के मूल्यांकन करने के लिए आज कहीं बहुत अच्छी स्थिति में हैं। चीन के बौद्ध साहित्य के भंडार में हे चो की कोई जीवनी उपलब्ध नहीं है। अतः हमने उसके जीवन के बारे में सविस्तार विवरण देने का प्रथम प्रयास किया है। हे चो के यात्रा-वृत्तांत के महत्व पर बल देते हुए *संस्मरण* के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं का निर्धारण कर, उन्हें हम आठवीं शताब्दी के एशिया के इतिहास के अध्ययनकर्ताओं के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

हे चो कोरिया उपमहाद्वीप के शिन ल्वो या सिल्ला राज्य का मूल निवासी था। जिसका स्पष्ट संकेत उसने अपने लेखन में दिया है और इसे अन्य स्रोतों से भी प्रमाणित किया जा सका है।[14] लेकिन उपलब्ध स्रोतों में इस बात का उल्लेख नहीं है कि वह मूलतः सिल्ला में पैदा हुआ था या चीन में। इसी तरह उसकी जन्मतिथि का भी उल्लेख नहीं है और मृत्युतिथि का भी। यदि हम उसकी मृत्यु

14. हे चो ने अपनी एक कविता में लिखा है कि मेरा देश उत्तरी क्षितिज में है (माई कंट्री इज इन नॉर्थ होराइजन)। यह उसकी मातृभूमि की दिशा का एक सामान्य संकेत है। अमोघवज्र की अंतिम इच्छा-पत्र (वसीयत) के मूल-पाठ में हे चो ने स्पष्ट रूप से स्वयं को 'शिन ल्वो का हे चो' लिखा है।

के अनुमानित समय से उसके जन्म के समय का अनुमान लगाएं तो उसकी जन्म तिथि 700 ईस्वी के लगभग बैठती है। कुछ विद्वानों ने सुझाया है कि हे चो का जन्म 704 ईस्वी या बौद्ध संवत् 1364 में हुआ होगा। इस तिथि के निर्धारण का आधार यह धारणा है कि वह विख्यात तंत्रयानी बौद्ध आचार्य वज्रबोधि (सन् 671-741) से मिला था और उनका शिष्य हो गया था। आचार्य वज्रबोधि सन् 719 में दक्षिण चीन के क्वांग चओ (केंटन) पहुंचे थे। यह माना जाता है कि वह यहीं पर हे चो को मिले होंगे। उस समय हे चो की उम्र लगभग सोलह साल की थी। इस आधार पर विद्वानों का यह सुझाव तर्कसंगत प्रतीत होता है। अनुमान लगाया जाता है कि इसके बाद ही हे चो चीन से तीर्थयात्रा पर निकल पड़ा, लेकिन इस अनुमान को समर्थन देने वाला कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

उपलब्ध स्रोत हे चो के प्रारंभिक जीवन के बारे में कोई विवरण नहीं देते। दूसरे, हे चो के *संस्मरण* की प्राप्त पांडुलिपि में से उसका प्रथम भाग गायब है, जिसमें चीन से यात्रा आरंभ करने के समय आदि का विवरण रहा होगा। उससे यह पता चल सकता था कि वह कब और कहां से भारत की तीर्थयात्रा पर रवाना हुआ। संभवतः वह सन् 724 से कुछ समय पहले ही रवाना हुआ होगा, क्योंकि उसने स्वयं वापसी में चीन के सीमांत क्षेत्र आनशी पहुंचने की तिथि दिसंबर 727 दी है। इस तिथि में से उस तिथि को जब कुशीनगर में अपना *संस्मरण* लिखना शुरू किया, घटाने से यही तिथि 724 बनती है। उसने अपनी यात्रा का आरंभ दक्षिण चीन से किया और दक्षिणी समुद्र मार्ग से भारत की यात्रा की, ठीक उसी प्रकार जैसी कि उसके पूर्ववर्ती तीर्थयात्री इत्सिंग ने की थी। हे चो की तीर्थयात्रा के प्राथमिक चरण का निर्धारण ह्वेइ लिन (737-820) द्वारा हे चो के *संस्मरण* के पूर्ण मूल पाठ से लिये गए उद्धरणों से किया जा सकता है। इन उद्धरणों में कुछ भौगोलिक तथा नृशास्त्रीय नाम हैं जैसे काओ म्यै (खमेर), पो-ती, ल्वो त्सिंग क्वो या नंगे लोगों का द्वीप (निकोबार) इत्यादि जो भारत जाने वाले समुद्री मार्ग का संकेत देते हैं।

भारत में हे चो की यात्रा का आरंभ तब से होता है जब वह इस देश के पूर्वी भाग में उतरता है, जैसाकि ह्वेइ लिन के उद्धरणों से ज्ञात होता है। हे चो ने अपने *संस्मरण* में लिखा है कि उसने कुशीनगर, सारनाथ, राजगृह और बोध गया जैसे पवित्र स्थलों की यात्रा की। वह वाराणसी और कन्नौज जैसे नगरों की भी यात्रा पर गया। उत्तर-मध्य भारत से वह दक्षिण की ओर गया, जहां वह उस नगर में पहुंचा, जिसे चालुक्य राज्य की राजधानी के रूप में पहचाना

गया है। इसके बाद यात्रा को जारी रखते हुए वह पश्चिमी भारत में पहुंचा, जिसे काठियावाड़ का वल्लभी राज्य बताया जाता है। इसके बाद उसने उत्तर-पश्चिमी भारत की यात्रा की और मार्ग में जालंधर नगर तथा सिंधु नदी के तटवर्ती राज्य को भी देखा। वह इससे और आगे उत्तर में कश्मीर घाटी तथा उसके सीमावर्ती पड़ोसी देशों में गया। गंधार, कापिशा तथा मध्य एशिया के अनेक देशों का भ्रमण करता हुआ अंततः वह आनशी पहुंचा, जो चीन के थांग साम्राज्य का सीमांत नगर था, जिसे उसने कूचा बतलाया है। उसने *संस्मरण* में लिखा है कि वह खाइ य्वेन काल के पंद्रहवें साल के ग्यारहवीं के चंद्रमा के दिन आनशी पहुंचा। यह तिथि दिसंबर, 727 बैठती है।

भारत से चीन लौटने के उपरांत, हे चो संभवतः छांग आन स्थित ता च्येन फू मठ में रहा और वज्रबोधि की देख-रेख में कार्य करता रहा। उसके वज्रबोधि के साहचर्य में कार्यरत रहने की जानकारी *महायान-योगवज्र-प्रकृति सागर-मंजुश्री-सहस्रबाहु-सहस्रपत्र-महातंत्रराज-सूत्र* की भूमिका से मिलती है। इस भूमिका में कहा गया है कि हे चो ने इस सूत्र का अध्ययन खाइ य्वेन काल के इक्कीसवें वर्ष के सातवें दिन, अर्थात 21 जनवरी, 733 से आरंभ किया। इसी में यह भी उल्लेख है कि आठ साल के अध्ययन के बाद, इस सूत्र के अनुवाद का कार्य 6 जनवरी, 741 को वज्रबोधि द्वारा आरंभ कराया गया। हे चो इस सूत्र के अनुवाद में वज्रबोधि का सहायक अनुवादक या लिपिक था।[15] दुर्भाग्य से इसी वर्ष शरद ऋतु में इस अनुवाद के पूरा होने से पहले ही वज्रबोधि का निधन हो गया। इसके बाद वज्रबोधि के अंतिम इच्छा-पत्र (वसीयत) के अनुसार सूत्र की मूल संस्कृत पांडुलिपि 30 मार्च, 742 को भारत भेज दी गई। भूमिका में यह भी लिखा हुआ है कि वज्रबोधि की मृत्यु के बाद हे चो ने इस सूत्र के अगले भाग का अध्ययन अमोघवज्र (705-774) के निर्देशन में नवंबर-दिसंबर, 774 में किया। इसके बाद 23 मई, 780 को इस अनुवाद को वह वू थाइ पर्वत पर प्रतिलिपि कराने के लिए ले गया। उसी वर्ष 11 जून से च्येन य्वेन फू थी मठ में प्रतिलिपि बनाने का काम आरंभ हो गया।

---

15. सामान्यतः पेई-शु शब्द का तात्पर्य मुख्य अनुवादक द्वारा संस्कृत से चीनी में की गई व्याख्या को बोलकर लिखाए गए को लिपिबद्ध करने वाले लिपिक या प्रतिलिपि करने वाले से लिया गया है, लेकिन कई बार संस्कृत से चीनी में अनुवाद करने का काम मुख्य रूप से पेई-शु का ही होता था, विशेषकर उस स्थिति में जबकि मुख्य अनुवादक को चीनी भाषा पर पूरी तरह से अधिकार नहीं होता था।

वज्रबोधि के साथ हे चो के साहचर्य का आधार केवल उक्त सूत्र की भूमिका है। इस सूत्र के अनुवाद को अमोघवज्र के साथ जोड़ा जाता है। इस अनुवाद और विशेषकर इसकी भूमिका की प्रामाणिकता विवादास्पद हो गई है। पहले तो विद्वानों और ग्रंथ-सूचीकारों द्वारा इस अनुवाद को अमोघबज्र का प्रामाणिक कार्य माना जा रहा था, लेकिन इधर हाल के अध्ययनों द्वारा इसकी प्रामाणिकता को चुनौती दी गई है। इस अनुवाद और इसकी भूमिका की प्रामाणिकता पर विद्वानों ने निम्नलिखित प्रश्न उठाए हैं–

1. जब वज्रबोधि की मृत्यु सितंबर/अक्टूबर, 741 में हो गई, तब वे उससे अगले वर्ष सन् 742 में अपने अनुयायियों को मूल संस्कृत पांडुलिपि को भारत लौटाने का निर्देश कैसे दे सकते थे?
2. अमोघवज्र की मृत्यु 28 जुलाई, 774 को हुई, तब इसी साल के अगले महीने नवंबर/दिसंबर में वह हे चो को सूत्र का अगला भाग कैसे पढ़ा सकते थे?
3. यदि सूत्र का अनुवाद सन् 780 में पूरा हो गया था, तो फिर इसे क्रमशः सन् 800 और 807 में तैयार की गईं समसामयिक ग्रंथ-सूचियों (च्येन य्वेन काल के दौरान तैयार किए गए *ए केटालॉग ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर* तथा *ए कांप्रेहेंसिव डिक्शनरी ऑव कैनूअंस*) में सम्मिलित क्यों नहीं किया गया?
4. प्रारंभिक स्रोतों के अनुसार, वज्रबोधि जब चीन गए थे तब रास्ते में उनकी समस्त पांडुलिपियां खो गई थीं, तो फिर इस सूत्र की पांडुलिपि उनके पास कैसे बची रह गई ? उन्होंने यह पांडुलिपि हे चो को कहां से दी?
5. इस सूत्र के अनुवाद और प्रस्तुतीकरण में व्याख्या शैली और इसकी विषयवस्तु पर भारतीय शैली का बहुत गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। जैसा कि इस अनुवाद को पहली बार सन् 938 में बौद्ध भिक्षु हंग आन द्वारा वू थाइ पर्वत स्थित एक मठ के संग्रह में पाया गया, इससे प्रतीत होता है कि संभवतः मठ का यह संग्रह थांग काल के आखिरी दौर (लगभग 9वीं शताब्दी में) किया गया हो। कुछ विद्वानों ने इस सूत्र के अंश उद्धृत किए हैं और उनका मिलान फान वांग चिंग में उपलब्ध समांतर उन्हीं अंशों से करने पर पाया है कि फान वांग चिंग के ये अंश अमोघवज्र के भाष्य या टीका से अधिक कुछ नहीं हैं।

यद्यपि, ये उपरोक्त प्रश्न विचारणीय हैं, तथापि, सूत्र की भूमिका में दी गई जानकारियों को, भली-भांति आगे परीक्षण किए बिना, पूरी तरह से निरस्त नहीं किया जा सकता। यहां तक कि जिन विद्वानों ने अनुवाद की प्रामाणिकता को चुनौती दी है, उन्होंने भी भूमिका में उल्लिखित हे चो के जीवन संबंधी विवरण को स्वीकार किया है। हम यहां यह सुझाव देने का भी जोखिम उठाना चाहेंगे कि इस सूत्र की भूमिका, हो सकता है कि हे चो की अधूरी मूल पांडुलिपि के आधार पर किसी परवर्ती संकलनकर्ता ने लिखी हो, जिसमें उसके अपने निजी विचार भी शामिल कर दिए हों।

भूमिका में तिथियों को लेकर जो विसंगतियां हैं, उसके बारे में इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि तिथियों के उल्लेख में दो अलग-अलग विधियां अपनाई गई हैं। पहली विधि में तिथियां चक्रीय चिह्नों (साइक्लीकल करेक्टर) में हैं। उदाहरण के लिए जैसा कि भूमिका में लिखा है :

खाइ य्वैन काल के इक्कीसवें वर्ष में, यह साइक्लीकल ऑर्डर में क्वेइ य्वी वर्ष था।

दूसरे स्थान पर भूमिका में आगे लिखा है :

खाइ य्वैन काल के अठाइसवें वर्ष में, साइक्लीकल ऑर्डर में केंग सेन का वर्ष था।

तिथियों का उनके साइक्लीकल करेक्टर के साथ लिखा जाना चीनी इतिहासकारों द्वारा प्रयुक्त एक पारंपरिक विधि है। साइक्लीकल करेक्टर की उनकी समरूप तिथियों में गणना कर पाना कोई आसान काम नहीं है। यहां तक कि मध्यकालीन साइक्लीकल करेक्टर्स को लेकर कुछ प्रख्यात बौद्ध इतिहासकारों से भी गलतियां हुई हैं। कम से कम ऊपर दिए गए दो उदाहरणों की तिथियां बिलकुल सही हैं और संबंधित ऐतिहासिक तिथियों के समरूप हैं। उपरोक्त इन दो विधियों से तिथियों का लिखा जाना यह सिद्ध करता है कि हे चो के समय में या उस युग में समकालीन घटनाओं का विवरण इसी प्रकार लिखा जाता था।

तिथियों के लेखन की यह साइक्लीकल करेक्टर वाली विधि भूमिका के केवल पहले भाग में ही है। इसके बाद, दूसरे भाग में तिथियां उनके साइक्लीकल करेक्टर के बिना लिखी गई हैं। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि जिन तिथियों को लेकर विद्वानों में मतभेद है, वे भूमिका के दूसरे भाग में हैं। एक ही भूमिका में तिथियों के लेखन की दो विधियों के अपनाई जाने से इनके बीच की भिन्नताएं स्पष्ट हैं। हमारा निष्कर्ष है कि जो तिथियां उनके साइक्लीकल करेक्टर्स के साथ

दी गई हैं, वे विश्वसनीय हैं, जबकि भूमिका के अगले भाग में दी गई बिना साइक्लीकल करेक्टर की तिथियां बाद के काल में जोड़ी गई हैं। हो सकता है कि ये तिथियां गलत हों, फिर भी जिन घटनाओं का उल्लेख किया गया है, वे नितांत आधारहीन नहीं हो सकतीं।

यदि हमारे इस सुझाव को मान लिया जाए तो तिथियों को लेकर जो विसंगतियां हैं, उनका समाधान हो सकता है। भूमिका को लेकर जो दूसरी आपत्तियां हैं, उनका समाधान दूसरे स्पष्टीकरण से हो सकता है। उदाहरण के लिए, भूमिका स्वयं में यह दावा नहीं करती कि सूत्र का मूल-पाठ वज्रबोधि द्वारा स्वयं चीन लाया गया। यह दूसरों द्वारा भी लाया गया हो सकता है।[16] जहां तक इस सूत्र के अनुवाद को दो समसामयिक ग्रंथ-सूचियों में सम्मिलित नहीं किए जाने का प्रश्न है तो वह इसलिए नहीं हो सका कि यह अनुवाद अधूरी पांडुलिपि के रूप में था और राजधानी छांग आन के उस मठ में नहीं था, जहां ग्रंथ-सूची और ग्रंथ-कोश तैयार किया गया। जहां तक अनुवाद की शैली का प्रश्न है तो हो सकता है कि उसमें संस्कृत के मूल-पाठ की शैली का अनुसरण किया गया हो या इस अनुवाद में संस्कृत का मूल-पाठ सहज ही भाष्य के रूप में आ गया हो। जहां तक बोधिसत्व मंजुश्री[17] का प्रश्न है तो यह तांत्रिक बौद्ध मत भारत में लोकप्रिय रहा है, इसलिए अनुवाद में भारतीय बौद्ध धर्म के प्रभाव का होना कोई ऐसी समस्या नहीं है कि उसे परवर्ती काल में जोड़ा गया संकलन माना जाए। और जहां तक समानांतर अंशों की बात है तो यह लाक्षणिक सामान्यता है, जो अनेक सूत्रों में पाई जाती है। ये सभी बिंदु दर्शाते हैं कि हे चो की जीवन संबंधी जानकारियों के विषय में भूमिका विश्वसनीय प्रतीत होती है, लेकिन कुछ भ्रम भी हैं, जो भूमिका के लेखन के बारे में बराबर बने रहते हैं।

वज्रबोधि के साथ हे चो के साहचर्य की जानकारी मात्र अनुवाद की भूमिका पर आधारित है, जबकि अमोघवज्र के साथ उसका साहचर्य एक पृथक् प्राथमिक स्रोत से भी प्रमाणित है। हे चो द्वारा जो एक स्मरण-पत्र चीन के सम्राट को दिया गया, उससे यह ज्ञात होता है कि हे चो को चओ चि देश भेजा गया था, जहां

---

16. वज्रबोधि के चीन पहुंचने के बाद, और भी दूसरे व्यक्ति थे, जो भारत से चीन पहुंचे थे। उदाहरण के लिए, हे चो स्वयं ही सन् 727 में भारत से चीन लौटा था। उत्तर भारत से मित्र नाम का एक बौद्ध भिक्षु सन् 729 में चीन गया था।
17. अमोघवज्र ने *मंजुश्री* संबंधी सिद्धांतों का अनुवाद किया और *मंजुश्री* की उपासना हेतु मंदिर एवं संस्थानों की स्थापना की।

उसने जैड-मेड पूल के समीप वर्षा के लिए प्रार्थना की, जो सफल रही। यह घटना मार्च, 774 की है। इस स्मरण-पत्र में हे चो ने स्वयं को राजकीय धार्मिक संस्थान का एक सदस्य श्रमण बतलाया है।

सन् 774 को लिखी अपनी वसीयत में तंत्राचार्य अमोघवज्र ने स्वयं कहा है—

बहुत से शिष्य हैं, जिन्होंने मेरे मठ से धर्म की शिक्षा प्राप्त की है। इनमें से आठ शिष्य तो धर्म के पांचों सिद्धांतों में भली-भांति शिक्षित हैं। इनमें से दो की मृत्यु हो चुकी है, केवल छह अभी जीवित हैं। ये हैं—चिन क मठ का हान क्वांग, सिल्ला का हे चो... । यदि युवा बौद्ध भिक्षुओं को (भविष्य में) कोई कठिनाई आए तो तुम (छहों शिष्य) उनकी समस्या का समाधान करना। धर्म की ज्योति को बुझने नहीं देना।

अमोघवज्र की मृत्यु के तत्काल बाद हे चो और उसके सहयोगियों ने सम्राट को एक स्मरण-पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने अपने गुरु के अंतिम संस्कार के दौरान महामहिम सम्राट द्वारा जो राजकीय संवेदना-सहानुभूति प्रकट की गई, उसके लिए धन्यवाद ज्ञापन किया गया। इसमें यह भी प्रार्थना की गई कि उनके गुरु द्वारा स्थापित धार्मिक संस्थान को बनाए रखा जाए (यानी, उसे दिए जाने वाला राजकीय संरक्षण जारी रखा जाए)।

ऐसा प्रतीत होता है कि हे चो छांग आन में कुछ वर्ष और रहा। भूमिका के उल्लेख के अनुसार, सन् 780 के दौरान वह सूत्र के अधूरे अनुवाद को लेकर वू थाइ पर्वत (के मठ) में पहुंचा। वह च्येन य्वैन फू थी मठ में रहा और वहां सूत्र के मूल-पाठ को चीनी भाषा में लिप्यांतरित किया।

यहां यह जानना भी रोचक रहेगा कि हे चो वू थाइ मठ में क्यों गया? शायद वहां वह इसलिए गया कि उस समय वह लगभग अस्सी वर्ष का हो चुका था, अतः कार्य निवृत्त हो स्थायी रूप से वहीं रहना चाहता था। दूसरे, वू थाइ उसके लिए तीर्थ-स्थल के समान था क्योंकि अमोघवज्र इस मठ से अनन्य रूप से संबद्ध रहे थे। उन्हीं की पहल पर चिन क और यू-हुआ मठ बने थे और इन मठों के साथ उन्होंने अपने मत के शिष्यों को जोड़ा था। कुछ दूसरे अन्य धार्मिक संस्थान भी अमोघवज्र के प्रभाव से स्थापित हुए थे। अमोघवज्र के प्रमुख शिष्यों में हान क्वांग चिन क मठ में रहता था और संभवतः वह इसका मठाधीश भी था। अमोघवज्र ने अपने दूसरे शिष्य हुइ-सिआओ तथा ह्वेइ लांग को विभिन्न

अवसरों पर राजकीय धार्मिक सेवा कार्य के लिए वू थाइ भेजा था। सन् 781 में येन चेंग द्वारा लिखित अमोघवज्र के एक शिलालेख के अनुसार अमोघवज्र के उत्तराधिकारी के रूप में केवल हूवेइ लांग के नाम का ही उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि सन् 780 के बाद हे चो छांग आन में नहीं था। इस शिलालेख में हे चो के नाम का उल्लेख न होने से यह प्रमाणित नहीं होता कि उसकी मृत्यु हो गई होगी। वैसे, इसके कुछ समय बाद हो गई होगी क्योंकि वह काफी आयु का हो चुका था।

हे चो अपने जीवन काल में चीन में तांत्रिक बौद्ध मत के प्रचार-प्रसार से जुड़ा रहा। चीन में तांत्रिक बौद्ध मत का आरंभ भारत के बौद्ध तंत्राचार्य शुभकरसिंह द्वारा किया गया, जो सन् 716 में चीन आया, छांग आन में रहा और सन् 735 में निन्यानवें साल की आयु में मृत्यु को प्राप्त हुआ। हे चो का शुभकरसिंह के साथ साहचर्य रहा होगा, ऐसा कोई संकेत उपलब्ध स्रोतों में नहीं मिलता, लेकिन हे चो कम से कम उन्हें जानता अवश्य होगा। चीन में तांत्रिक बौद्ध मत एक असाधारण मत था, जो मुख्यतः आठवीं और नौवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल की अवधि तक ही सीमित रहा। चीन में तांत्रिक बौद्ध मत के इस स्वर्णकाल के संदर्भ में हे चो के जीवन पर दृष्टिपात करना भी रोचक है। हे चो का जीवन काल चीन में महान बौद्ध तंत्राचार्यों के जीवन काल के दौरान व्यतीत हुआ है। उसने प्रत्यक्ष रूप से वज्रबोधि तथा अमोघवज्र (और अप्रत्यक्ष रूप से शुभकरसिंह) के साथ राजधानी छांग आन में स्थित तंत्र विद्या के केंद्र में रह कर कार्य किया। हे चो एक प्रच्छन्न बौद्ध भिक्षु था। उसने भारत की तीर्थयात्रा के संस्मरण देने के सिवाय शायद ही कोई उल्लेखनीय कार्य किया हो। यह अनुमान लगाना भी उचित होगा कि शायद उसने भारत की यात्रा भी वज्रबोधि की प्रेरणा से की हो और वह भी तंत्र की शुभकरसिंह से उच्च स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए की हो। उस समय भारत में यह बौद्ध तंत्र मत आरंभ होकर महत्व प्राप्त करता ही जा रहा था। यद्यपि हे चो चीन में बौद्ध तंत्राचार्यों से अपने संबंधों का कोई संकेत नहीं देता, फिर भी उसका जीवन चीन में बौद्ध तंत्र मत के सबसे महत्वपूर्ण कालखंड का इतिहास है।

वर्तमान में हे चो की *भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा के संस्मरण* का मूल-पाठ केवल विखंडित अवस्था में ही प्राप्त है, जिसे सन् 1908 में पॉल पेलिओट ने तुन हूवांग मठ से खोजा था। इस *संस्मरण* के प्रारंभिक यानी यात्रा के आरंभ के और अंतिम, यात्रा का निष्कर्ष निकालने वाले भाग नष्ट हो चुके हैं। यहां

तक कि संस्मरण का मूल पाठ भी संघनित रूप में है।[18] *संस्मरण* की विषयवस्तु भी इतने विस्तार और महत्व की नहीं है, जितनी कि ह्वान सांग और इत्सिंग के लिखे संस्मरणों की है। हालांकि पांडुलिपि का हस्तलेख बहुत सुंदर है, फिर भी उसमें ऐसे कितने ही अनजाने करेक्टर (चिह्न) हैं, जो केवल तुन ह्वांग मठ की पांडुलिपियों में ही पाए जाते हैं और इनमें से भी अधिकांश करेक्टर तो शब्द-कोशों में भी नहीं मिलते। वाक्यों की संरचना अपूर्ण है, जिससे मूल-पाठ को समझने में बहुत कठिनाई होती है।

गद्य लेखन में हे चो की शैली सामान्य स्तर से ऊपर नहीं उठ सकी है। उसने जिन शब्दों, पदबंधों और वाक्यों का प्रयोग किया है, वे निश्चय ही लालित्य या दक्षतापूर्ण नहीं हैं। हे चो के लेखन की तुलना यदि ह्वान सांग तथा उनके शिष्यों, जैसे ख्वेइ चि और ताओ श्वैन तथा अन्य तीर्थयात्री इत्सिंग से की जाए तो एक बहुत बड़ा अंतर दिखाई पड़ता है। *संस्मरण* के प्रसंग बहुत ही अस्पष्ट और कामचलाऊ किस्म के हैं। यद्यपि, उसका काव्य-लेखन उसके गद्य-लेखन से अच्छा है, फिर भी वह उनके समकालीनों के काव्य-लेखन की तुलना में निम्न स्तर का ही है।

हे चो को भारत और मध्य एशिया के देशों की भाषाओं का ज्ञान बहुत कम था। हालांकि, उसने अपने *संस्मरण* में देशों के बीच की भाषाओं के अंतर का उल्लेख किया है, लेकिन उसने किसी भी भारतीय भाषा या बोलियों के नामों का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण, संभवतः भाषा संबंधी ज्ञान का अभाव है, जिसकी वजह से उसने *संस्मरण* में सही नाम नहीं दिए। भाषा-विज्ञान संबंधी ज्ञान के अभाव के कारण ही शायद वह वज्रबोधि और अमोघवज्र जैसे महत्वपूर्ण आचार्यों का मुख्य सहायक नहीं बन सका। उसके द्वारा सूत्र के जिस अनुवाद के किए जाने की चर्चा पहले की जा चुकी है, यदि यह माने कि सूत्र का पूरा अनुवाद या अंशतः अनुवाद उसके द्वारा किया हुआ है तो भी यह लगता है कि वह उसके जीवन काल में पूरा नहीं हो सका था।[19]

---

18. एक विद्वान ल्वो चेन यू ने बतलाया है कि ह्वेइ लिन की डिक्शनरी के अनुसार हे चो के *संस्मरण* तीन भागों में विभक्त थे, लेकिन तुन ह्वांग मठ में जो पांडुलिपि पाई गई है वह उसका केवल एक ही भाग है। दूसरे, हे चो के संस्मरणों के कुछ उद्धरण जो ह्वेइ लिन की डिक्शनरी में पाए गए हैं, वे इस पांडुलिपि में नहीं हैं जिससे सिद्ध होता है कि इस पांडुलिपि में *संस्मरण* को संक्षिप्त या संघनित किया गया है।
19. सूत्र के अनुवाद को हे चो तब तक पूरा नहीं कर सका था। हालांकि, भूमिका में यह उल्लेख है कि हे चो ने वज्रबोधि की देख-रेख में आठ साल तक सूत्र का अध्ययन किया।

इस बारे में उसके *संस्मरण* से संबंधित ग्रंथ-सूची संबंधी साक्ष्य महत्वपूर्ण है। प्रख्यात ग्रंथ-सूचीकार युआन चाओ ने, जो हे चो का सहयोगी भी था, अपनी ग्रंथ-सूची में उसके *संस्मरण* का उल्लेख नहीं किया। इसका संभावित कारण यही हो सकता है कि युआन चाओ को नहीं लगा होगा कि हे चो का *संस्मरण* साहित्यिक स्तर पर स्वीकृति प्राप्त कर पाया है। लेकिन ह्वेइ लिन ने अपने कोश में हे चो के *संस्मरण* का फाहियान, ह्वान सांग आदि के यात्रा-विवरणों के साथ उल्लेख किया है। ह्वेइ लिन, जैसाकि मध्य एशिया के काशगर का मूल निवासी था, उसकी समझ हे चो के *संस्मरण* के बारे में युआन चाओ की तरह रूढ़िवादी हान साहित्यिक प्रवृत्ति से प्रभावित नहीं थी। संभवतः उसकी हे चो के *संस्मरण* के ऐतिहासिक महत्व की समझ कहीं अधिक गहरी रही हो।

हे चो का *संस्मरण* अपनी उपलब्ध पांडुलिपि की कमियों के बावजूद भारत और मध्य एशिया के आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल के इतिहास की जानकारी का निश्चित तौर पर एक महत्वपूर्ण स्रोत है। हे चो का *संस्मरण* हमारी जानकारियों में जो नई सूचनाएं जोड़ता हैं, उनकी ऐतिहासिक ज्ञात तथ्यों के संदर्भ में विस्तृत विश्लेषण किए जाने की आवश्यकता है, ताकि भारत और मध्य एशिया के इतिहास के उस अस्पष्ट, लेकिन महत्वपूर्ण, दौर की सही जानकारी मिल सके। अन्य चीनी बौद्ध तीर्थयात्रियों की तरह हे चो ने भी तथ्यों को आख्यानों सहित अपने *संस्मरण* में दर्ज किया है। हालांकि *संस्मरण* में कुछ इतिहासगत कमजोरियां हैं, जैसे हे चो ने विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों का उल्लेख किया है, लेकिन उनमें से अधिकांश का केवल संक्षिप्त-सा विवरण दिया है। बहुत से राज्यों की राजधानियों या प्रमुख नगरों के नाम नहीं लिखे। उसने विभिन्न राज्यों के राजाओं का उल्लेख तो किया है, लेकिन उनके नाम या उपाधियों का उल्लेख नहीं किया।

इन सब कमियों के होते हुए भी हे चो का *संस्मरण* भारत और मध्य एशिया की ऐतिहासिक घटनाओं तथा सामाजिक स्थितियों का एक महत्वपूर्ण समसामयिक दस्तावेज है। ऐसे दस्तावेजों की भारत के प्राचीन इतिहास और विशेषकर आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल के इतिहास की जानकारी के लिए हमेशा आवश्यकता रहेगी। इस *संस्मरण* के ऐतिहासिक महत्व का एक उदाहरण पश्चिमी भारत तथा मध्य एशिया पर अरबों के आक्रमण हैं, जिनका वह स्वयं एक समसामयिक साक्ष्य है। हे चो लिखता है कि जब वह भारत में था, ताजिक या अरबों ने पश्चिम भारत के देशों में से आधे पर कब्जा कर रखा था। सिंध पर अरबों के प्रारंभिक आक्रमणों की जानकारी हमें केवल मुस्लिम ऐतिहासिक स्रोतों से ही प्राप्त होती

है, जबकि पश्चिमी भारत के गुजरात क्षेत्र के वल्लभी राज्य पर अरबों के आक्रमण की जानकारी केवल वल्लभी के उत्कीर्ण अभिलेखों से ही मिलती है और वह भी केवल यह कि अरबों के प्रारंभिक आक्रमण को सन् 736 में विफल कर दिया गया, लेकिन हे चो का *संस्मरण* इस (सन् 736) के आक्रमण से भी पहले के अरबों द्वारा भारत पर आक्रमण किए जाने की सूचना देता है, जो बहुत महत्वपूर्ण है।[20] हे चो अपनी भारत यात्रा के दौरान, सन् 724-25 में जब वल्लभी पहुंचा तो उसने लिखा, *'वर्तमान में आधे देश में अरबों ने घुसपैठ की हुई है और उसे तबाह कर रखा है।'* (वस्तुतः सबसे पहले अरब हमलावार मुहम्मद बिन कासिम ने इस क्षेत्र (कठियावाड़) के राजा दाहिर पर सन् 712 में आक्रमण कर यहां कब्जा कर लिया था और मार-काट व लूट-पाट मचा कर तबाही मचाई हुई थी)। मध्य एशिया की राजनीतिक स्थितियां और अरबों के बढ़ते आक्रमणों के बारे में हे चो का विवरण विशेष रूप से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उसके *संस्मरण* के विवरण बताते हैं कि सन् 727 में मध्य एशिया का कौन सा देश अरबों, तुर्कों, तिब्बतियों, चीनियों के अधीन था तथा कौन सा देश स्वतंत्र था। वैसे, इस काल में, चीन के थांग वंश के शासनकाल के दौरान, चीन अपने मित्र तुर्कों के साथ मध्य एशिया में बढ़ती अरबी फौजों के साथ सीधी मुठभेड़ करने के लिए तैयार खड़ा था। हे चो ने मध्य एशिया में अरबों की जो स्थिति देखी, वह स्थिति ज्यादा दिन नहीं रही। मध्य एशिया पर चीनियों का आधिपत्य सन् 751 में तलस नदी के महत्वपूर्ण युद्ध के बाद क्षीण हो गया। दरअसल, इस युद्ध में अरब, चीन के पहले रह चुके मित्र, तुर्कों से जा मिले थे और इस युद्ध में कोरियाई-चीनी सूबेदार को सोन-जी को पराजय का मुंह देखना पड़ा था। हे चो का *संस्मरण* शायद एक गैर-मुस्लिम यात्री का समसामयिक विवरण है, जो अरबों द्वारा जीते जाने तथा मुस्लिम सभ्यता के प्रसार से पहले की मध्य एशिया की स्थिति का अंतिम विवरण है। मध्य एशिया हमेशा से बौद्ध संस्कृति का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है, विशेषकर उस कालखंड के दौरान, जब चीन में बौद्ध धर्म का अंतरण हो रहा था। हे चो की यात्रा के कुछ समय बाद ही मध्य एशिया में उदय हुई नई (इस्लामिक) सांस्कृतिक शक्तियों के कारण बौद्ध धर्म वहां से लुप्त हो गया होगा और बौद्ध दर्शन तथा तीर्थों का परंपरागत स्थल मार्ग अवरुद्ध हो गया होगा।

---

20. आर. सी. मजूमदार (एडीटर) : *हिस्ट्री ऐंड कल्चर ऑव द इंडियन पीपुल,* वोल्यूम III, 'द क्लॉसिकल ऐज', पेज 558

तीर्थयात्रियों के विवरणों का महत्व

संभवतः यह विरोधाभासी स्थिति है कि इन तीर्थयात्रियों के ये यात्रा विवरण, जहां एक ओर अपने मुख्य विषय—बौद्ध धर्म के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं, वहीं ये दूसरे अन्य विषयों में वर्तमान अध्येताओं के लिए बहुत कम महत्व रखते हैं। इन विवरणों में जो भी सूचनाएं हैं, वे बौद्धों द्वारा बौद्धों के लिए लिखी गई हैं, और ये प्राचीन बौद्ध दर्शन तथा इतिहास के अध्येताओं के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। वैसे, इन सभी विवरणों में ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं पुरातात्विक जानकारियां हैं, जो किसी में कम और किसी में ज्यादा हैं। जहां इत्सिंग बौद्ध धर्म की औपचारिक गतिविधियों, पूजा-पाठ के विधि-विधानों के अलावा अपने समय के भारत के बारे में बहुत ही अल्प जानकारी देता है, वहीं ह्वान सांग पर्याप्त जानकारियां देता है, जबकि दोनों का मुख्य उद्देश्य और प्राथमिक सरोकार बौद्ध धर्म है। वे हमें बौद्धधर्मी देशों की यात्रा भी कराते हैं। जैसी कि हम पहले चर्चा कर चुके हैं, हे चो द्वारा दी गई जानकारी ऐतिहासिक महत्व की है लेकिन वह भी प्राथमिक रूप से बौद्ध देशों की ही चर्चा करता है। इस संबंध में एक आधुनिक इतिहासकार की दृष्टि से थामस वाटर्स द्वारा की गई ह्वान सांग की यह आलोचना सही लगती है, वह यह कहता है—

> *उसकी (ह्वान सांग की) बौद्ध धर्म के प्रति आस्था सहज ही स्वाभाविक थी, जिस पर कोई प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता, अतः चमत्कारों में विश्वास करने की उसकी प्रवृत्ति स्वाभाविक थी, जिसे उसका भोलापन भी कहा जा सकता है। लेकिन उसके इस भोलेपन के आधार पर चमत्कारों में विश्वास कर उसे मान लेना केवल इसलिए ही संभव नहीं कि उसने ऐसा लिखा है। उसका ऐसा लिखना तो उसकी निजी धारणाओं या उसके*

पूर्वग्रहों के अनुकूल था। हालांकि उसने हमेशा यही चाहा कि चमत्कारों के बारे में वह एक प्रकार से अपना निजी शपथ-पत्र, अपनी अनुभूतियों का साक्ष्य या कम से कम अपना व्यक्तिगत अनुभव दे। यह सच है कि उसकी आस्था ने उसके अंदर संदेह भी पैदा किया, लेकिन जहां बौद्ध धर्म संबंधी चमत्कारों का प्रश्न है, वहां उनमें विश्वास कर लेना उसके लिए सहज रहा है। ... लेकिन उसका इन चमत्कारों में विश्वास करना भी आंशिक ही है, जो उसने अन्य कारणों से किया है। अतः वह इन कारणों से उपलब्ध अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग नहीं कर पाया है। वस्तुतः वह एक अच्छा पर्यवेक्षक, एक सतर्क अन्वेषणकर्ता और संतोषजनक विवरणकार नहीं है, उसने बहुत कुछ अनकहा छोड़ दिया है, जिसे वह बहुत अच्छी तरह कह सकता था।[21]

थामस वाटर्स द्वारा की गई ह्वान सांग की यह आलोचना प्रायः सभी तीर्थ यात्रियों के विवरणों पर लागू होती है। लेकिन वाटर्स हमें यह भी याद दिलाता है–

हालांकि, हमें यह भी याद रखना चाहिए कि ह्वान सांग अपनी यात्रा में अन्य दूसरी बातों पर कम ही ध्यान देता है क्योंकि वह केवल बुद्ध और बौद्ध धर्म को जानना चाहता है। बुद्ध और बौद्ध धर्म में उसकी पूरी आस्था है, इनके प्रति उसका समर्पण भाव और उसका उत्साह उसके समकालीनों की अपेक्षा कहीं अधिक उल्लेखनीय है, जो हमारी दृष्टि में आज भी असाधारण है।

प्राचीन भारतीय बौद्ध चिंतन और इतिहास के अध्ययनकर्ताओं के लिए ये यात्रा विवरण ईस्वी सन् की प्रथम सहस्राब्दि में भारतीय बौद्ध धर्म का जो वृत्तांत देते हैं, वह अतुलनीय है। उदाहरण के लिए, इत्सिंग ने हमें बौद्ध संप्रदायों के विभिन्न मतों की सविस्तार व्याख्या के साथ उनकी सामान्य भू-भौगोलिक क्षेत्रों की जानकारी भी दी है। ह्वान सांग ने भी इन बौद्ध मतों की विस्तृत भू-भौगोलिक स्थिति देने के साथ उन क्षेत्रों की, जहां की उसने यात्रा की, वहां पर स्थिति बौद्ध मठों और उनमें रहने वाले बौद्ध भिक्षुओं की संख्या की जानकारी भी दी है। उसने यह भी बताया है कि वे बौद्ध भिक्षु हीनयान मत के थे या महायान मत के। ह्वान सांग ने यह भी संकेत दिया है कि उस क्षेत्र का राजा बौद्ध धर्म के

---

21. थामस वाटर्स : *ऑन ह्वान सांग'स ट्रेवल्स इन इंडिया*, लंदन, 1904-05, पेज 14-15

प्रति मैत्री भाव रखता था या शत्रु भाव तथा उसके राज्य में बौद्ध धर्म की क्या स्थिति थी।

बौद्ध धर्म की बौद्धिक परंपराओं के संदर्भ में इत्सिंग और ह्वान सांग, ये दोनों ही उपयोगी सूचनाएं देते हैं। इत्सिंग ने असंग, वसुबंधु, अश्वघोष और नागार्जुन जैसे महान ऐतिहासिक बौद्ध आचार्यों का उल्लेख किया है। उसने इन आचार्यों के साथ धर्मपाल जैसे आचार्य का उल्लेख करते हुए अन्य तर्कशास्त्रियों, व्याकरणाचार्यों तथा उनके लगभग समकालीन अन्य आचार्यों का भी उल्लेख किया है। इत्सिंग की निश्चित तिथियां हमें ज्ञात हैं, जिनका भारतीय स्रोतों से उपलब्ध सूचनाओं के साथ मिलान करते हुए हम इन महान आचार्यों की अनुमानित तिथियां निर्धारित कर सकते हैं। इत्सिंग आचार्य नागार्जुन के बारे में जानकारी देने के साथ हमारी सूचनाओं में यह भी अभिवृद्धि करता है कि उन्होंने पश्चिमी भारत के सातवाहन वंश के एक राजा, जिसका समय ईस्वी सन् लगभग 100 था, के नाम लिखे एक पत्र का अनुवाद किया था। पत्र के बारे में कहा जाता है कि वह एक निजी पत्र रहा होगा। ह्वान सांग और हे चो दोनों ही आचार्य नागार्जुन की परंपराओं का उल्लेख करते हैं। ह्वान सांग और विशेषकर ह्वेइ ली द्वारा लिखी ह्वान सांग की जीवनी - *लाइफ ऑव ह्वान सांग* से हम नालंदा विहार विश्वविद्यालय तथा वहां पर ह्वान सांग के अध्यापक रहे योगाचार्य धर्मपाल के बारे में स्पष्ट जानकारियां प्राप्त कर सकते हैं।

इन तीर्थयात्रियों ने बौद्ध धर्म में प्रचलित पूजा-पाठ के विधि-विधान तथा मान्यताओं के बारे में भी अच्छी जानकारियां दी हैं। इत्सिंग ने जहां पूजा-पाठ और विधि-विधान की परंपरागत जानकारियां दी हैं, वहां ह्वान सांग ने पर्व-त्योहार तथा समारोहों का विवरण दिया है। साथ ही, भारत भर में प्रचलित बौद्ध धर्म की कथाओं और परंपराओं को भी दिया है। वाटर्स ने बौद्ध धर्म के प्रति इन तीर्थयात्रियों के जिस सहज, सरल, भोले-भाले विश्वास की आलोचना की है, वह उस समय के बौद्ध धर्म के वातावरण का सहायक था। दूसरे, सबसे महत्वपूर्ण यह है कि ये विवरण बौद्ध धर्म संबंधी व्यक्तिगत वृत्तांत हैं, जिसमें इन तीर्थ-यात्री लेखकों की गहन आस्था थी। वैसे, इस तरह के विवरण भारतीय परंपरा में भी उपलब्ध नहीं हैं।

यद्यपि तीर्थयात्रियों के ये विवरण चीन के राजवंशों के इतिहास की तुलना में हर तरह से परिपूर्ण ऐतिहासिक विवरण नहीं हैं, तब भी ये प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए कोई कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। यदि भारत के पास

अपनी निजी इतिहास लेखन की परंपरा होती, तब भी ये विवरण उसके लिए महत्वपूर्ण सहायक स्रोत सिद्ध होते। वैसे, भारत में इतिहास लेखन पूर्ण विकसित रूप में कभी नहीं रहा, फिर भी यूरोप और चीन के पुरातन स्रोत तथा भारत के पुरालेख व मुद्राएं आदि प्राचीन भारतीय इतिहास के मुख्य स्रोत तो हैं ही। बौद्ध तीर्थयात्रियों के विवरणों में यदि उनके ये निजी वृत्तांत न होते तो प्राचीन भारतीय इतिहास विषयक हमारी जानकारी में तथ्यपरक आधार-सामग्री तथा निजी अनुभूतियों—इन दोनों का अभाव होता।

आधुनिक इतिहासकार राजनीतिक, सामाजिक और पुरातात्विक—मुख्य रूप से इन तीन क्षेत्रों में विशेष रुचि रखते हैं। ये तीर्थयात्री जिस क्षेत्र से होकर गुजरे हैं, वहां की उन्होंने राजनीतिक स्थितियों का प्रायः उल्लेख किया है। हे चो के विवरणों में समसामयिक राजनीतिक स्थितियों का स्पष्ट उल्लेख है। भारत पर अरबों के आक्रमण का जो उल्लेख हे चो ने किया है, वह एक उल्लेखनीय उदाहरण है। दूसरे, यात्रा विवरणों में संयोगवश ही सही, प्रायः तथ्यपरक राजनीतिक विवरण आ ही गए हैं। इन विवरणों का अन्य स्रोतों से प्राप्त विवरणों के साथ मिलान करके उस क्षेत्र की राजनीतिक स्थिति की सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है। भारत के उत्तर-पश्चिम तथा मध्य एशिया की, इत्सिंग को छोड़कर प्रायः सभी तीर्थयात्रियों ने यात्रा की है और ये दोनों क्षेत्र हमेशा से ऐसे रहे हैं, जहां राजनीतिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान अधिक हुआ है। फाहियान की यात्रा के समय कुषाण साम्राज्य अस्त हो रहा था और गुप्त वंश उदय होकर अपना प्रभाव इन क्षेत्रों पर फैलाता जा रहा था। फाहियान ने हालांकि राजनीतिक स्थिति के बारे में सही जानकारी बहुत कम दी है, फिर भी गंधार में उसने कनिष्क के बारे में जो किंवदंतियां सुनीं, उन्हें लिखा है। फाहियान के आगमन से पूर्व कनिष्क ही वह अंतिम महान सम्राट था, जो इस क्षेत्र पर राज्य करता था। तीर्थ-यात्री सुंग य्विन ने, जिसकी यात्रा उत्तर-पश्चिम भारत तक ही सीमित रही, यहां के इस काल के राजनीतिक इतिहास की बहुत ही रोचक जानकारी दी है। य्विन इस क्षेत्र में उस समय आया जब यहां राजनीतिक स्थिति अस्थिर थी। घुमंतू जाति के लोगों ने जिन्हें श्वेत हूण या इफाथालिट्स कहा जाता है, इस क्षेत्र पर आक्रमण कर मार-काट मचाई हुई थी, जिसने बौद्ध धर्म को बुरी तरह प्रभावित किया हुआ था। यही कारण था कि सुंग य्विन अपनी भारत यात्रा में आगे नहीं बढ़ सका और वह यहीं से वापस लौट गया।

वास्तव में आज के इतिहासकारों की विशेष अभिरुचि हूणों द्वारा उस समय

भारत पर किए गए आक्रमण संबंधी सुंग य्विन के विवरणों में ही है क्योंकि भारतीय इतिहास का यह दौर अत्यंत अस्पष्ट है। इस दौर में सुंग य्विन गंधार के जिस राजा से मिला था, उसका नाम मिहिरकुल था और वह उस समय कश्मीर के साथ युद्ध करने में लगा हुआ था। शायद, यही कारण रहा कि सुंग य्विन गंधार से आगे नहीं बढ़ सका। ह्वान सांग ने जब उत्तर-पश्चिमी भारत और मध्य एशिया की यात्रा की, उस समय ये क्षेत्र पश्चिमी तुर्कों के अधीन थे। इसीलिए उसने इस क्षेत्र में अपनी सुरक्षित यात्रा के लिए तुर्कों के राजा से राजाज्ञा प्राप्त की थी। इस क्षेत्र में उस समय महान सम्राट हर्ष भी अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयास कर रहा था। ह्वान सांग सम्राट हर्ष का अच्छा मित्र था। ह्वान सांग की जीवनी में सम्राट हर्ष के बारे में जो व्यक्तिगत उल्लेख हैं, वे प्राचीन भारतीय राजनीतिक इतिहास के अध्ययन के लिए अनूठे हैं। हे चो ने जिस समय उत्तर-पश्चिमी भारत तथा मध्य एशिया के सीमांत तक ही यात्रा की उस समय एक नई राजनीतिक और सांस्कृतिक शक्ति का उदय हो रहा था। यह नई शक्ति अरबों की थी। इन यात्रा विवरणों से इन क्षेत्रों का एक मिला-जुला क्रमवार ऐतिहासिक विवरण तैयार किया जा सकता है। इन यात्रा विवरणों से, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से, जो राजनीतिक आधार-सामग्री मिलती है, वह इतिहासकारों के लिए अत्यंत उपयोगी है।

आज सामाजिक-इतिहासकारों के लिए इन तीर्थयात्रियों के विवरण विशेष महत्व के हैं। इत्सिंग को छोड़कर सभी तीर्थयात्रियों ने भारत का जो समसामयिक समाज देखा है, उसका सविस्तार वर्णन किया है। विदेशी यात्री होने के नाते उनके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे यहां के सामाजिक रीति-रिवाजों और परंपराओं का उल्लेख करते, जो उनके लिए नए व असामान्य थे। ह्वान सांग ने जिन देशों की यात्रा की, वहां के समाज का सविस्तार विवरण देने में विशेष रुचि और सावधानी बरती है। उसने तो देशों की भौगोलिक स्थितियों, उनके क्षेत्रफल, मौसम और फसलों तक का विवरण दिया है, यहां तक कि वहां के निवासियों के व्यवहार और तौर-तरीकों की समीक्षा भी की है। वह बौद्धधर्मी था, इसलिए वह जहां भी गया, वहां के समाज की धार्मिक वृत्ति का भी उसने उल्लेख किया, साथ ही, बौद्ध धर्म की सामाजिक स्थिति का विवरण देने में भी स्वाभाविक रुचि दिखाई। हे चो ने भी सामाजिक विवरण दिए हैं। उसके विवरण संभवतः ह्वान सांग से उत्कृष्ट हैं, क्योंकि उसने ह्वान सांग की तरह एक सूत्रबद्ध तरीके से विवरण न देकर, उन्हीं बातों का उल्लेख किया है, जो उसे उस देश में विशेष लगी हैं। हे चो ने जिन देशों की यात्रा की है, उन देशों के कृषि उत्पाद तथा अन्य उत्पादनों,

वहां के रहने वालों के पहनावे और उनके वाह्य रंग-रूप व शक्ल-सूरत की विशेषताओं के साथ-साथ बौद्ध धर्म की सामाजिक स्थिति का भी विवरण दिया है। इसके अतिरिक्त उसने अन्य महत्वपूर्ण जानकारियां भी दी हैं, जैसा कि उसने मध्य एशिया के राजा के दरबार में याचिका या आवेदन प्रस्तुत करने की विधि का वर्णन किया है। इन तीर्थयात्रियों के विवरणों से तथ्यपरक और महत्वपूर्ण सामाजिक आधार-सामग्री, विशेष रूप से बौद्ध धर्म के संदर्भ में, प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के लिए, ह्वान सांग नालंदा के बारे में इस तथ्य का विशेष रूप से उल्लेख करता है कि जिस जगह नालंदा है, उस भूमि को व्यापारियों ने दस कोटि स्वर्ण मुद्राओं में खरीदकर बुद्ध को दान में दिया था और ह्वान सांग की जीवनी से पता चलता है कि नालंदा महाविहार का व्यय एक सौ गांवों के राजस्व की सहायता से चलता था, जबकि इस तरह की तथ्यात्मक सामाजिक सूचनाएं भारतीय परंपरा के किसी भी समसामयिक साहित्यिक स्रोत में उपलब्ध नहीं हैं।

आज के पुरातत्वविदों और कला-इतिहासकारों के लिए इन तीर्थयात्रियों के विवरण, विशेषकर ह्वान सांग के विवरण, एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं क्योंकि उन्होंने भारत भर के महत्वपूर्ण बौद्ध स्मारकों के बारे में जानकारियां दी हैं कि वे कहां-कहां स्थित हैं। ह्वान सांग ने जिन बौद्ध स्मारकों और बौद्ध विहारों को देखा था, उनकी भौगोलिक स्थिति का विस्तारपूर्वक उल्लेख करते हुए, उनके पास की अन्य स्थानीय जगहों तक का ठीक-ठीक विवरण दिया है, जिसके आधार पर इन स्थानों का पता लगाकर उनके उत्खनन में पुरातत्वविदों को अत्यंत सहायता मिली है। सच कहा जाए तो ह्वान सांग को अपने समय के भारत के बौद्ध स्थलों का पथ-प्रदर्शक कहा जा सकता है। उसके इस कार्य की तुलना प्राचीन काल के लेखक पुसानिअस से की जा सकती है, जिसने यूनान की पुरातात्विक धरोहरों की पथ-प्रदर्शिका लिखी थी। बोध गया, राजगीर और नालंदा जैसे बौद्ध स्थलों का तो ह्वान सांग आज के अध्ययनकर्ताओं के लिए भी पथ-प्रदर्शक है। उन्नीसवीं सदी का महान भारत विद्याविद एवं पुरातत्ववेत्ता जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ह्वान सांग द्वारा बताई दिशाओं में चलकर ही नालंदा और वैशाली जैसे महत्वपूर्ण बौद्ध स्मारकों की जगह का पता लगा सका। बाद में इन जगहों पर प्रारंभिक उत्खनन कार्य कराकर यह पता लगाया गया कि ये वही स्थान है या नहीं, तो पता चला कि ये वहीं स्थान हैं। इसके बाद उत्खनन कर इन स्मारकों को प्रकाश में लाया गया। यह केवल ह्वान सांग द्वारा उपलब्ध कराई गई जानकारियों के आधार पर ही संभव हो सका।

यात्रा विवरणों के पुनः अनुवाद की आवश्यकता

पचास साल पहले प्रख्यात इतिहासकार विंसेंट ए. स्मिथ ने फाहियान के यात्रा विवरण के बारे में कहा था–

अभी तक फाहियान के यात्रा विवरण का ऐसा कोई अंतिम निर्णायक अनुवाद अपने अद्यतन भाष्य सहित नहीं आया है, जो भारत और चीन दोनों देशों के विद्वानों की आवश्यकताओं को पर्याप्त रूप से पूरा कर सके और ऐसा अनुवाद तैयार कर पाना किसी एक लेखक के लिए नितांत असंभव है।[22]

विंसेंट स्मिथ का यह कथन सभी बौद्ध तीर्थयात्रियों के विवरणों पर लागू होता है, और यह कथन आज भी निश्चित तौर पर उतना ही सही है जितना कि उनके समय में था। आज जो भी अनुवाद उपलब्ध हैं, वे उन्नीसवीं सदी की अध्ययनवृत्ति के परिणाम हैं, जिसे उनकी संलग्न संदर्भ-ग्रंथ सूचियों को देखकर जाना जा सकता है। ये अनुवाद अपने समय में, यानी उन्नीसवीं सदी के लिए, पर्याप्त थे, लेकिन तब से लेकर आज तक चीन और भारत दोनों ही देशों की अध्ययनवृत्ति में उल्लेखनीय विकास हो चुका है। दूसरे, हे चो के *संस्मरण* का अंग्रेजी अनुवाद और उसका भाष्य अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ, जो भारतीय इतिहास और संस्कृति के अध्ययन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसलिए अब वह समय आ गया है कि अनुवादों के लिए एक वृहद एवं महत्वपूर्ण योजना बनाई जाए।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र एक ऐसा प्रमुख क्षेत्र है जिसमें कई प्रकार से बहुत प्रगति हुई है। तीर्थयात्रियों के ये विवरण चीनी भाषा में लिखे हुए हैं

---

22. विंसेंट ए. स्मिथ : द *अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया,* ऑक्सफर्ड, 1924, पेज 25

और चीनी भाषा में लिखी प्राचीन पांडुलिपियों के अनुवाद कार्य में बहुत प्रगति हुई है—शब्दों के अर्थों को समझने में भी, और शैली में भी।

चीनी तीर्थयात्रियों के ये विवरण भारत के बारे में हैं और वे चीनी भाषा में हैं, इसलिए अनुवादक के लिए भारतीय भाषाओं का पूर्ण ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। तीर्थयात्रियों ने तो भारतीय नामों, स्थानों तथा बौद्ध धर्म की पारिभाषिक शब्दावली को उस रूप में प्रस्तुत किया, जो उनके चीनी पाठकों के लिए बोधगम्य हो सकती थी। अतः आज के अनुवादक का एक मुख्य काम तो यह होगा कि वह उन नामों, स्थानों आदि को मूल भारतीय रूप में पुनर्सृजित करे। भाषा विज्ञान की यह अध्ययनवृत्ति, जो विवरणों की अंतर-सांस्कृतिक प्रवृत्ति के साथ एकरूप थी, पहली बार अनुवाद करते समय बहुत कम समझी जा सकी। तीर्थयात्रियों ने भी स्वयं भारतीय शब्दों के अर्थ चीनी भाषा में देने में कठिनाई अनुभव की थी। इसीलिए इत्सिंग ने तो एक अध्याय ही संस्कृत व्याकरण और काव्यशास्त्र को लेकर लिखा था। बौद्ध धर्म संबंधी चीनी रचनाओं के अनुवाद जो इस शताब्दी में हुए हैं, उनका उपयोग अब नाम, स्थान और पारिभाषिक बौद्ध शब्दावली के बिलकुल सही-सही अनुवाद तक पहुंचने में किया जा सकता है।

नए अनुवाद करने में प्राचीन भारत के इतिहास और पुरातत्व के अध्ययन के क्षेत्र में जो प्रगति हुई है का उपयोग करके भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में हुई प्रगति का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। तीर्थयात्रियों ने जिन स्थानों और व्यक्तियों का उल्लेख किया है, जिनके बारे में पहले मात्र संभावना ही व्यक्त की जा सकती थी, अब उनकी सही-सही पहचान हो सकती है। जैसा पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जनरल अलेक्जेंडर कनिंघम ने ह्वान सांग के आधार पर जिन महत्वपूर्ण बौद्ध पुरातात्विक स्थलों को तलाशा और पहचाना था, उन्हें अब उत्खननों द्वारा प्रकाश में लाया जा चुका है। अतः इन उत्खननों से प्राप्त आधार सामग्री का उपयोग करके आज के अध्ययनकर्ता तीर्थयात्रियों के विवरणों का कहीं अधिक सटीक अनुवाद कर सकते हैं। सारनाथ, बोध गया, नालंदा और राजगीर जैसे प्रमुख बौद्ध स्थलों के अनेक तीर्थयात्रियों ने विवरण दिए हैं। हम इन विवरणों का उपयोग उत्खनन से प्राप्त बौद्ध स्मारकों और निजी भवनों की स्पष्ट पहचान, उनकी स्थिति तथा उनके बारे में सही-सही जानकारी प्राप्त करने में कर सकते हैं, जबकि इन विवरणों के प्रारंभिक अनुवादकों को इस प्रकार के पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं थे।

ये यात्रा विवरण जब पहली बार अनूदित हुए, तब से लेकर अब तक प्राचीन

भारतीय इतिहास के अनेक तथ्य बहुत कुछ स्पष्ट हो चुके हैं। अनगिनत पुरातात्विक स्थलों के अन्वेषण तथा पुरालेख, मुद्रा-विज्ञान और मूल-पाठों की समीक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति से प्राचीन भारत के एक नए ऐतिहासिक ढांचे का विकास हो चुका है जिसके संदर्भ से तीर्थयात्रियों ने जो कुछ लिखा है, उसे अब पहले से कहीं अधिक भली-भांति समझा जा सकता है। इतिहासकारों ने इन विवरणों का, जब से ये बहुचर्चित हुए हैं, तब से इनमें दी गई तत्संबंधी ऐतिहासिक सूचनाओं का और गहराई से अध्ययन किया है। इस तरह आज के अनुवादक के पास प्राचीन भारतीय इतिहास की उत्कृष्ट जानकारी है, जिससे वह अनुवाद करने और ऐतिहासिक संदर्भों की व्याख्या करने में कहीं अधिक सक्षम है। अतः आशा की जा सकती है कि नए अनुवादों के माध्यम से यात्रा विवरणों से प्राप्त नई ऐतिहासिक जानकारियों को और अधिक स्पष्टतः समझाने के लिए अन्य विद्वान आगे आएंगे। हे चो के *संस्मरण* का नया अनुवाद उन इतिहासकारों के लिए विशेष महत्व का होगा, जो चीनी या अल्प ज्ञात जर्मन अनुवाद को नहीं समझ सकते।

प्राचीन भारतीय इतिहास के बहुत से अध्येताओं को अपने विषय में व्यस्तता के कारण चीनी भाषा पढ़ने का अवकाश नहीं है, जबकि इन विवरणों की उपादेयता प्राचीन भारतीय अध्ययन की अनेक शाखाओं में है, इसलिए परिशुद्ध अनुवादों की एक श्रृंखला की बहुत आवश्यकता है। इस श्रृंखला के अनुवाद एक मानक अनुवाद हों, प्रस्तुति आधुनिक पठनीय शैली में हो और उसमें अध्ययनवृत्ति की अद्यतन उपलब्धियों का समावेश हो। ऐसे अनुवादों की आवश्यकता इसलिए भी है ताकि दो महान संस्कृतियों के धर्म के आधार पर बने पारस्परिक संपर्क की एक महागाथा का पुण्य स्मरण भी किया जा सके। इस सांस्कृतिक संपर्क की महागाथा का महत्व और अनूठापन आज के पाठकों के लिए फाहियान द्वारा उल्लिखित इस घटना में देखा जा सकता है। फाहियान ने लिखा है—

> *जब हम (फाहियान और उसका साथी ताओ यिंग) पहली बार उस (ध्वस्त) जैतवन में आए तो यह विचार करके कि विश्व वंदनीय (भगवान बुद्ध) यहां कभी पच्चीस वर्ष कैसे रहे होंगे, मस्तिष्क में दुखदायी प्रतिच्छायाएं उभरने लगीं। (हम) सीमा पार के देश (चीन) में जन्मे, अपने समान विचार वाले मित्रों के साथ, अनेक राज्यों से गुजर कर यात्रा करते हुए (यहां) आए, हम में से कुछ मित्र (अपने देश को) लौट गए और कुछ की (मृत्यु ने) जीवन की निस्सारता और अनिश्चितता प्रमाणित कर दी, आज उन्होंने (हमने) वह स्थान देखा जहां बुद्ध रहे थे, जो अब उनके बिना खाली है। (हम) हार्दिक वेदना से अवसादग्रस्त*

थे, तभी भिक्षुओं का समूह बाहर आया और उसने (हम से) पूछा कि वे (हम) किस राज्य से आए हैं। 'हम आए हैं,' (हमने) उन्होंने कहा, (हम) हान (जाति के लोगों) की भूमि से आए हैं।' 'आश्चर्य', भिक्षुओं ने दीर्घ विश्वास लेते हुए कहा, 'सीमांत पार देश के लोग हमारे धर्म की खोज में यहां (तक) आ सकते हैं!' फिर उन्होंने एक-दूसरे से कहा, 'हमने तो हमेशा, आचार्य और भिक्षुओं को ही (यहां) एक के बाद एक आते देखा है। हमने कभी हान जाति के लोगों को, जो हमारे धर्मानुयायी हो, आते नहीं देखा!'[23]

और, इस प्रकार भारत तथा चीन के सांस्कृतिक संपर्क के इस अनूठे काल का प्रारंभ हुआ।

23. जेम्स लेगी : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स*, ऑक्सफर्ड, 1886, पेज 57-58

संदर्भ-ग्रंथ

फाहियान

एस. बील : *ट्रेवल्स ऑव फाहियान एंड सुंग य्विन,* लंदन, 1869; रिट्रांसलेट इन *बुद्धिस्ट रिकाई्स ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड,* लंदन, 1884

एच.ए. गिल्स : *द ट्रेवल्स ऑव फाहियान (399-414)* या *ए रिकॉर्ड्स ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स,* शंघाई एंड लंदन, 1877, केंब्रिज, 1923

जेम्स लेगी : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडम्स,* ऑक्सफर्ड, 1886

सुंग य्विन

एस. बील : *ट्रेवल्स ऑव फाहियान एंड सुंग य्विन,* लंदन, 1869; रिट्रांसलेट इन *बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड,* लंदन, 1884

ह्वान सांग

एस. बील : *बुद्धिस्टक रिकॉर्ड्स ऑव द वेस्टर्न वर्ल्ड,* लंदन, 1884; *लाइफ ऑव ह्वान सांग बाई द शमन्स ह्वेइ ली एंड येन सुंग,* लंदन, 1888

इत्सिंग

जे. तकाकुसु : *ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्ट रिलीजन,* ऑक्सफर्ड, 1896

भाग–2

संस्मरण का अनुवाद : भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थ–यात्रा

हे चो का यात्रा संस्मरण भारत के पांचों क्षेत्रों की यात्रा

1. वैशाली (?)

...ये (यहां के) लोग त्रि-रत्नों का आदर नहीं करते... ।[1] वे नंगे पैरों आते-जाते और नग्न रहते हैं। विधर्मी *(बौद्ध धर्म में आस्था न रखने वाले)* वस्त्र नहीं पहनते... ।[2] वे किसी भी समय खा-पी लेते हैं, क्योंकि वे उपोसथ *(निराहार व्रत)* का पालन नहीं करते। भूमि बिल्कुल सपाट है..। वे दास [नहीं] रखते ।[3] आदमियों को *(गुलाम बनाकर)* बेचने को वे हत्या करने से भिन्न नहीं मानते...।

2. कुशीनगर

एक महीने की यात्रा के बाद, मैं कुशीनगर के देश में पहुंचा।[4] यह वह (नगर)

---

1. यह अधूरी पांडुलिपि बौद्ध धर्म के न मानने वाले लोगों के विवरण से आरंभ हुई है। त्रि-रत्नों का तात्पर्य बुद्ध, धर्म और संघ से है
2. यहां पर प्रयुक्त शब्द हालांकि, इतना धुंधला पड़ चुका है कि पढ़ने में नहीं आता, फिर भी इसका अर्थ (नग्न रहने के) अलावा और कुछ नहीं हो सकता
   (यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यह उजड़ा हुआ क्षेत्र है, जैसा कि ह्वान सांग और इत्सिंग ने इसे उजाड़ और वीरान पाया था। हो सकता है, यहां कुछ लोग हों और हो सकता है, वे नंगे बदन रहते हों या फिर हे चो ने जिन्हें देखा हो वे लोकायत मत के या दिगंबर साधु हों)
3. 'वे दास [नहीं] रखते' इस वाक्य में 'नहीं' शब्द इससे अगली पंक्ति के कारण लगाया गया है। वैसे भी भारत में दास प्रथा नहीं रही। दास प्रथा के न होने से सिकंदर के साथ आए यूनानी विद्वान भारत से प्रभावित थे
4. उत्तर प्रदेश का वर्तमान जिला कुशीनगर

है, जहां बुद्ध ने निर्वाण प्राप्त किया है। नगर उजाड़ है और लोग यहां नहीं रहते। स्तूप उस स्थान पर बनवाया गया था जहां बुद्ध ने निर्वाण लिया था।[5] यहां एक ध्यानी बौद्ध *(आचार्य)* है,[6] जो इस स्थान को साफ-सुथरा रखता है। प्रति वर्ष आठवें महीने के आठवें दिन,[7] भिक्षु-भिक्षुणियां, पुजारी और सामान्य जन यहां पूजा के लिए बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित होते हैं। [इस अवसर पर] असंख्य पताकाएं आकाश में प्रकट होंगी *(स्तूप स्थल को बंदनवार व ध्वजा पताकाओं से सजाया जाएगा)*, जो सभी लोगों को दिखाई देगीं। उस दिन बहुत से लोग [धर्म में] अपना ध्यान लगाएंगे।

स्तूप के पश्चिम में एरावती नदी है।[8] नदी गंगा में मिलने से पूर्व दो हजार ली *(यानी एक हजार किलोमीटर)* दक्षिण की ओर बहती है।[9] स्तूप सभी ओर से अलग-थलग है, कोई आदमी वहां नहीं जाता। जंगल बहुत ही निर्जन है।

---

5. स्थानीय लोग इस स्थान को 'माथा कौर' (मृत राजकुमार) कहते हैं
(माथा कुंवर (कौर) एक अलग मंदिर है, जो निर्वाण स्तूप से कुछ दूरी पर है। यह मंदिर हे चो के बाद का है। इसमें लगभग दसवीं सदी की, हल्के नीले एकाश्म प्रस्तर की भूमिस्पर्श मुद्रा में बैठी बुद्ध की प्रतिमा है। वर्तमान में इसी मंदिर को माथा कुंवर मंदिर कहा जाता है। इस मंदिर का पुनर्निर्माण सन् 1926 में बर्मी बौद्ध परिवारों ने कराया है। बुद्ध ने साल वन में निर्वाण प्राप्त किया था, वहीं उनका दाह-संस्कार हुआ। इस दाह-संस्कार के स्थान पर जो स्तूप है, उसे रामभार स्तूप कहा जाता है। रामभार स्तूप और निर्वाण स्तूप के बीच लगभग एक किलोमीटर की दूरी है। निर्वाण स्तूप का पुनरुद्धार सन् 1927 में तथा उसके सामने निर्वाण मंदिर का पुनर्निर्माण सन् 1956 में किया गया है। हे चो ने जिस माथा कुंवर का उल्लेख किया है वह माथा कुंवर कोट नामक बौद्ध विहार परिसर था, जिसमें परिनिर्वाण की अवस्था में लेटी हुई बुद्ध प्रतिमा है, जिसकी स्थापना हरिबल नामक बौद्ध ने पांचवीं सदी में की थी।)
6. उच्च स्तरीय पुजारी या आचार्य। सामान्य भिक्षु नहीं
7. भारतीय आठवें महीने का आठवां दिन - सुदूर पूर्व (देशों) का सातवें महीने का पंद्रहवां दिन होना चाहिए। कोरिया में इसी दिन बुद्ध उत्सव मनाया जाता है
8. एरावती नदी ह्वान सांग के अनुसार अजितवती नदी, जिसके पश्चिम की ओर स्तूप था। स्तूप के पश्चिम में एरावती नदी के होने का यह अंतर संभवतः नदी द्वारा अपना मार्ग बदल देने के कारण आया होगा
9. दक्षिण दिशा यानी नीचे की ओर। एक ली की दूरी लगभग आधा किलोमीटर की दूरी के बराबर होती है
(एक हजार किलोमीटर दूरी का यह अनुमान सही नहीं है।)

जो *(यहां का)* तीर्थाटन करते हैं, *(प्रायः)* गैंडों और बाघों[10] द्वारा घायल कर दिए जाते हैं।

स्तूप से तीस ली (पंद्रह किलोमीटर) दक्षिण-पूर्व में बंधन नामक एक मठ है।[11] यहां तीस से अधिक गांव हैं। [इस मठ के साथ दान में लगाए गए, जिनमें से तीन या चार गांव][12] जो बराबर बौद्ध आचार्यों को भेंट देते रहते हैं, ताकि वे स्तूप पर धार्मिक कृत्यों को नियमित बनाए रख सकें...।

3. वारानसी

...दिनों [बाद] में वारानसी[13] के देश में पहुंचा। यह देश भी उजाड़ है। यहां *(कोई)* राजा नहीं है...।

...पांच मूर्तियों का [कौंडिन्य के नेतृत्व में] एक समूह।[14] मैंने स्तूप[15] पर एक मृण्मूर्ति देखी।

[स्तंभ के] शीर्ष पर यहां एक शेर [शेर की मूर्ति] है। स्तंभ अत्यंत ही सुंदर है।[16] [इसके घेरे की माप] पांच आदमियों[17] के आपस में हाथ पकड़े हुए

---

10. पांडुलिपि के जिस शब्द का अर्थ व अनुवाद टाइगर किया गया है, उसका तात्पर्य वस्तुतः एक अन्य अनुवाद के अनुसार, बड़े आकार के कीट-पतंगों से है, जो यात्रियों को डंक मारकर घायल कर देते थे। (यदि बाघ होते तो वे यात्रियों को घायल न करके मार ही डालते)
11. *महापरिनिर्वाण सुत्त* के अनुसार मुकुट-बंधन
(यह चैत्य बुद्ध के दाह-संस्कार स्थल (रामभार स्तूप) के पास था, जिसके अवशेष उत्खनन से प्राप्त हुए हैं।)
12. रास्ते में पड़ने वाले तीन या चार गांव
13. बनारस वर्तमान वाराणसी
14. बौद्ध धर्म में दीक्षित बुद्ध के प्रथम पांच शिष्य - अजात कौंडिन्य, अस्सजी (अश्वजित), महानाम, भद्दिय और वप्प। इन पांचों की ये मूर्तियां अब कोलकाता के संग्रहालय में हैं। ये मूर्तियां संभवतः ह्वान सांग के बाद लगाई गईं
15. संभवतः धम्मेक स्तूप
16. बिना पालिश किया खुरदरा और भारी-भरकम
17. पुरातात्विक उत्खनन में प्राप्त इस स्तंभ की ऊंचाई 27.5 फुट, निचले भाग का व्यास 2 फुट 4 इंच और शीर्ष भाग का व्यास 1 फुट 10 इंच मापा गया। यह स्तंभ मुख्य मंदिर की पश्चिम दिशा में कुछ ही दूरी पर पाया गया था

(घेरे के बराबर) है। इस पर उकेरी गईं रेखाएं कोमल हैं। स्तंभ स्तूप *(के निर्माण)* के समय बनाया गया था। विहार का नाम धर्मचक्र संघाराम है...।[18]

विधर्मी कोई कपड़ा नहीं पहनते। वे अपने शरीर[19] पर भस्म लगाते हैं और महादेव की पूजा करते हैं।[20] संघाराम में यहां सोने के मुलम्मे वाली चमकदार कांस्य प्रतिमाएं [बुद्ध की] और पांच सौ [प्रत्येक बुद्ध की] हैं।[21] इन प्रतिमाओं का निर्माण शीलादित्य,[22] मगध[23] के पूर्व नरेश द्वारा कराया गया था। उसने एक [धर्मचक्र] का भी निर्माण कराया, जिसका व्यास तीस कदम से अधिक है। नगर गंगा के उत्तरी किनारे पर बसा हुआ है।

---

18. ह्वान सांग के अनुसार इस विहार का नाम मृग दाव संघाराम हो सकता है। फाहियान ने यहां मृग दाव में दो मठों का उल्लेख किया है जिनमें बौद्ध भिक्षु निवास करते थे, लेकिन उसने इन मठों का नाम नहीं लिखा। पुरातात्विक दस्तावेजों में मठ का उल्लेख मुख्य मंदिर या मूलगंध कुटी के नाम से किया गया है। इसी मठ का तर्कसंगत नाम धर्मचक्र संघाराम है और इसके समीपवर्ती स्तूप का नाम धम्मेक स्तूप
19. 'कोई कपड़ा नहीं पहनते और अपने शरीर पर भस्म लगाते हैं,' यह कथन ह्वान सांग के कथन से बिलकुल मेल खाता है
20. महादेव की उपासना का जिक्र ह्वान सांग के उल्लेख में भी मिलता है, लेकिन अंतर इतना ही है कि ह्वान सांग उसका उल्लेख केवल वाराणसी में करता है, जहां उसने सैकड़ों शिव मंदिर देखे थे, जबकि हे चो वाराणसी और सारनाथ दोनों की एक साथ चर्चा करते हुए महादेव की उपासना का उल्लेख करता है
21. हे चो के इस कथन से संभवतः ह्वान सांग के उस उल्लेख की पुष्टि होती है कि मंदिर के विशाल कक्ष में धर्मचक्र प्रवर्तन की मुद्रा में कांस्य निर्मित बुद्ध की आदमकद प्रतिमा थी
    (प्रत्येक बुद्ध से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है, जो बौद्ध सिद्धांतों का अध्ययन किए बिना ही स्वयमेव बोधत्व (अर्हत की स्थिति) को प्राप्त कर लेता है। सम्बुद्ध, सम्यक् बुद्ध)
22. बुद्ध प्रतिमाओं और धर्मचक्र का निर्माण कराकर राजा शीलादित्य द्वारा भेंट किए जाने का उल्लेख विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हालांकि, ह्वान सांग हमें सम्राट हर्षवर्धन की बौद्ध धर्म के प्रति अनुरक्ति और बौद्धों को संरक्षण दिए जाने तथा उसके द्वारा पवित्र बौद्ध स्थलों पर बौद्ध विहार आदि बनवाने के बारे में तो बतलाता है, लेकिन बुद्ध प्रतिमा के बनवाने के बारे में नहीं बतलाता। ह्वान सांग क्योंकि हर्षवर्धन का अंतरंग मित्र था इसलिए हर्षवर्धन द्वारा प्रतिमाओं के बनवाए जाने के उल्लेख का ह्वान सांग से छूट जाना संभव नहीं है। यह हो सकता है कि ह्वान सांग के जाने के बाद के काल में हर्षवर्धन ने प्रतिमाएं बनवाईं हों। हे चो हर्षवर्धन का उल्लेख मगध के पूर्व नरेश के रूप में करता है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से सही प्रतीत होता है
23. मध्य भारत का (बिहार क्षेत्र गत राजगृह) प्राचीनतम राज्य, जिसका बौद्ध मत के साथ गहरा संबंध रहा। बौद्ध धर्म *(की प्रथम संगीति या परिषद बुद्ध के बाद यहीं राजगृह में हुई)* जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धांतों (*धम्म* और *विनय* निश्चित हुए) को पहली बार लिपिबद्ध यहीं किया गया

इस मृग दाव [हिरणों के वन] के साथ कुशीनगर, राजगृह और महाबोधि - ये चार पवित्र स्तूप हैं। ये सभी मगध राज्य के क्षेत्र में हैं। महायान और हीनयान इन दोनों का प्रचलन है।

.... मैं महाबोधि विहार *(बोध गया)* में पहुंच गया हूं। मैं अत्यंत प्रसन्न हूं कि मेरी चिर-प्रतीक्षित मनोकामना पूर्ण हुई। मैंने अपनी विनम्र भावनाओं को पांच-शब्द शैली की कविता में अभिव्यक्त किया—

बिना परेशान हुए
महाबोधि तक की दूरी से।
बिना डरे कि
मृग दाव से दूर है।
चिंतित था मैं केवल
खतरनाक रास्तों से।
परवाह नहीं की मैंने
शैतानी हवाओं की।
आठों स्तूपों[24] की यात्रा
सचमुच आसान नहीं है।
सभी स्थान जल चुके हैं।[25]
कैसे होंगी
किसी की कामनाएं पूर्ण ?
आज के दिन देखा है मैंने
इसे अपनी आंखों से।

---

24. आठ पवित्र स्थान, जहां परिभ्रमण करते हुए बुद्ध ने उपदेश दिए। इनमें से चार स्थानों के बारे में कहा जाता है कि उनकी यात्रा करने से इस मानव जीवन के लिए कृपा *(विराग)* प्राप्त होती है और दूसरे चार आध्यात्मिक स्थानों की यात्रा करने से स्वर्ग से कृपा *(मोक्ष)* प्राप्त होती है। इसीलिए इन आठों स्थानों पर स्तूप निर्मित किए गए *(बौद्ध ग्रंथों में इन्हें महाठानानि कहा गया है)*
25. आग से जलने के निशान। पुरातत्व की रिपोर्ट में कनिंघम ने लिखा है : 'सारनाथ के निकट प्रत्येक उत्खनन में मिले स्थानों को आग से जलाए जाने के प्रमाण देखे गए हैं। जलकर कोयला हुई लकड़ियां और अध-जले अन्न के दानों को मैंने स्वयं देखा है। यही स्थिति मेजर किटोए को भी मिली है। अपने उत्खनन के दौरान जगह-जगह आग से जले हुए सामानों के ढेर को देखते हुए मेजर किटोए को लिखना →

4. मध्य भारत और भारत के पांचों क्षेत्रों के रीति-रिवाज

वारानसी से [मैं पश्चिम की ओर चला और एक] महीने बाद उस नगर में पहुंचा जहां मध्य भारत का राजा *(संभवतः यशोवर्मन)* रहता है। यह नगर कान्यकुब्ज कहलाता है।[26] मध्य भारत के राजा का राज्य बहुत विस्तृत है और जनसंख्या भी बहुत है। राजा के पास नौ हजार हाथी हैं, जबकि दूसरे बड़े-बड़े मुखियाओं में से प्रत्येक के पास दो से तीन सौ हाथी हैं। राजा प्रायः स्वयं रणभूमि में सेना का नेतृत्व करता है और भारत के अन्य चारों क्षेत्रों से समय-समय पर लड़ता रहता है। मध्य भारत का राजा हमेशा विजयी रहता है।[27] यहां के देशों की प्रथा के अनुसार, जब एक *(राजा)* यह जान जाता है कि उसके पास हाथी और सैनिक *(मध्य भारत के राजा की अपेक्षा)* संख्या में कम हैं, तो वह तत्काल शांति *(संधि)* की याचना करता है और उसे प्रतिवर्ष भेंट देता रहता है। वे रणभूमि में परस्पर नहीं लड़ते और न एक-दूसरे की हत्या करते हैं।

पहनावा; भाषा, रीति-रिवाज और नियम भारत के पांचों क्षेत्रों में एक समान हैं। केवल दक्षिण भारत के ग्राम्य-जनों की भाषा अलग है।[28] राज्य के अधिकारियों का वर्ग जैसा मध्य भारत में है, उससे अलग नहीं है।

→ पड़ा कि, 'सब कुछ तहस-नहस कर जला दिया गया, पुजारियों, मंदिरों, मूर्तियों आदि सब को एक साथ जला दिया गया। कुछ जगहों पर आग के कारण मानव अस्थियां; लोहे और लकड़ी के सामान, मूर्तियां आदि, सब कुछ एक साथ जलाए जाने से सब आपस में मिलकर एक हुए, जले-अधजले सामान के बड़े-बड़े ढेर लग गए। और ऐसा एक बार नहीं, अनेक बार हुआ है।' कुछ विद्वानों के अनुसार ये स्थान आक्रमणकारी हूणों द्वारा पांचवीं और छठी शताब्दी में उत्तर-भारत पर किए गए आक्रमणों के दौरान जलाए गए होंगे। जबकि, बेल्गर और कुछ अन्य विद्वानों की राय है कि ये बौद्ध स्थल मुसलमान विजेताओं के कोप के शिकार हुए होंगे

26. कान्यकुब्ज (पालि = कण्णकुज्ज) वर्तमान उत्तर प्रदेश का नगर कन्नौज
27. हालांकि, मध्य भारत के राजा का नाम ईस्वी सन् 723-724 में यहां आए सिलियम राजा ने नहीं दिया है, लेकिन उसने जिस शक्तिशाली राजा का वर्णन किया है, वह यशोवर्मन के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। यशोवर्मन एक ऐतिहासिक पुरुष है, जो विश्व विजेतां का महान यश प्राप्त नहीं कर सका। यशोवर्मन ने अपने मंत्री भदंत को चीन के सम्राट के पास भेजा था और ह्वान सांग ने चीन के सम्राट से भदंत पो-ता-सिन को राजनयिक मान्यता देने की प्रार्थना की थी
28. संस्कृत भाषा हालांकि, शासकीय कार्यों में प्रयुक्त होती थी, लेकिन दक्षिण भारतीय समाज में नहीं पहुंच पाई थी। चालुक्य साम्राज्य में प्रचलित स्थानीय भाषाएं भाषायी आधार पर द्रविड भाषा समूह की थीं

भारत के पांचों क्षेत्रों के राष्ट्रीय विधि-विधान में अपराध दंड संहिता का निर्धारण नहीं है, शारीरिक यातना और जेल की सजा भी नहीं है। जो भी दोषी होता है, उस पर किए गए अपराध के अनुसार जुर्माना किया जाता है। यहां मृत्युदंड नहीं है। राजा से लेकर जन सामान्य तक में कोई भी बाजों या कुत्तों को लेकर मनोरंजन के लिए शिकार या ऐसा ही कोई काम नहीं करता। हालांकि, यहां मार्गों में बहुत से लुटेरे हैं, लेकिन वे सामान को छीनने के बाद अपने शिकार (राहगीर) को जीवित जाने देते हैं। यदि कोई अपने सामान को कसकर पकड़े रहता है तो वह तत्काल इसका नतीजा भुगतता है।

भूमि *(जलवायु)* बहुत गुनगुनी है *(न बहुत गर्म, न बहुत सर्द)*। पेड़-पौधे सदैव हरे रहते हैं। यहां न तो कोहरा पड़ता है, न बर्फ। भोजन में चावल, भुने हुए गेहूं का आटा *(सत्तू)*, मक्खन, दूध और दही शामिल रहता है। सोयाबीन *(से एक विशेष प्रकार की बनी चटनी)* यहां उपलब्ध नहीं है, लेकिन नमक है। हरेक व्यक्ति मिट्टी के बर्तनों में पकाया हुआ भोजन खाता है। उनके पास लोहे की कढ़ाई या उस जैसे दूसरे बर्तन नहीं हैं।

अपनी उपज में से पांचवां हिस्सा प्रति वर्ष राजा को लगान के रूप में देने के अलावा, लोगों को किसी और प्रकार की श्रम-सेवा या कर नहीं देना होता। राजा अपने आदमी भेजकर लगान का अन्न लदवाकर मंगवाता है, इसे भेजने की जिम्मेदारी भू-स्वामी की नहीं होती। यहां के अधिकतर लोग गरीब हैं, कुछ ही अमीर हैं। जो राज्य-परिवार के हैं, राज्य के अधिकारी-परिवारों के हैं, और अमीर हैं, वे दो सूती कपड़े पहनते हैं। आम आदमी एक ही कपड़ा पहनता है, जबकि गरीब लोग आम आदमी के कपड़े का भी आधा हिस्सा कपड़ा पहनते हैं। महिलाएं भी इसी तरह से कपड़े पहनती हैं।

राजा जब भी लोगों के बीच बैठता है *(दरबार लगाता है)* तो मुखिया गण और सामान्य लोग सभी आते हैं और उसके पास चारों ओर बैठ जाते हैं। हरेक आदमी अपने मामले को स्वयं राजा के सामने रखता है। बहुत से आरोप और प्रत्यारोप होते हैं कि मामला और भी उलझ जाता है, शोर-शराबा भी होता है। राजा सुनता है, लेकिन क्रोधित नहीं होता। वह अपना निर्णय सुनाते हुए मात्र इतना ही कहता है कि 'तुम सही हो' या 'तुम गलत हो।' आम आदमी और दूसरे लोग राजा के कहे को अंतिम निर्णय मानते हैं और फिर आगे कोई शिकायत नहीं की जाती।

राजा और उसके मुखिया लोग हृदय से त्रि-रत्नों का सम्मान करते हैं और

उनकी पूजा करते हैं। यदि वे किसी भिक्षु आचार्य से मिलते हैं तो वे जमीन पर बैठते हैं, अनिच्छा से ही वे आसनों पर बैठते हैं। राजा और मुखिया लोग जहां कहीं भी जाते या ठहरते हैं तो वे अपने साथ अपने-अपने आसन ले जाते हैं। जहां कहीं भी जरूरत पड़ती है तो वे अपने आसनों पर ही बैठते, विश्राम करते हैं। वे कभी भी दूसरों के आसन पर नहीं बैठते। बौद्ध मठ और राजकीय आवास सभी तीन मंजिले हैं। निचली मंजिल का उपयोग गोदाम के रूप में किया जाता है, जबकि ऊपरी मंजिलों का उपयोग रहने के लिए। बड़े-बड़े मुखियाओं के [मकान] भी ऐसे ही होते हैं। मकानों की छतें एक जैसी होती हैं, जो लकड़ी और ईंटों से बनती हैं। अन्य मकान घास-फूस की झोपड़ियों के, ठीक चीन के घरों की ढलावदार छतों की तरह होते हैं। ये एक मंजिले ही होते हैं।

यहां का उत्पादन केवल सूती कपड़े, हाथी, घोड़े और दूसरी चीजें हैं। यहां सोना और चांदी तैयार नहीं होता, इन्हें विदेशों से आयात किया जाता है। ऊंट, खच्चर, गदहे और सूअर जैसे घरेलू पशु नहीं पाले जाते। अधिकतर गायें सफेद रंग की हैं। दस हजार में मुश्किल से एकाध ही गाय लाल या काले रंग की होती है। भेड़ें और घोड़े दोनों ही बहुत कम हैं। केवल राजा के पास ही दो से तीन सौ भेड़ें और साठ से सत्तर घोड़े हैं। बड़े-बड़े मुखिया और आम लोग इन घरेलू पशुओं को नहीं पालते। वे केवल दुधारू पशुओं को पालने में ही रुचि रखते हैं क्योंकि उनसे ही वे दूध, दही, मक्खन और घी प्राप्त कर सकते हैं। यहां के निवासी अच्छे स्वभाव के हैं। वे हत्या करना पसंद नहीं करते। बाजारों में पशु-बध करता कोई कसाई या गोश्त बेचता व्यक्ति दिखाई नहीं देगा।

5. मध्य भारत के चार महान स्तूप

महायान और हीनयान दोनों का मध्य भारत में प्रचलन है। मध्य भारत के राज्य क्षेत्र में चार महान स्तूप हैं। तीन गंगा नदी के उत्तर में स्थित हैं। एक श्रावस्ती[29] के अनाथपिंडक[30] वन में है। वहां अनेक बौद्ध मठ हैं जिनमें बौद्ध भिक्षु रहते हैं।

---

29. श्रावस्ती मध्य भारत के कौशल देश की राजधानी थी, जहां बुद्ध के जीवन काल में राजा पसेसादि *(प्रसेनजित)* और विरुढक रहते थे और राजकुमार जैत के जैतवन में प्रसिद्ध जैतवन विहार भी निर्मित हो चुका था। उत्तर प्रदेश के वर्तमान गौंडा जिले में *सहेथ* नामक क्षेत्र, जहां पुरातात्विक उत्खनन में बौद्ध विहारों के अवशेष मिले हैं

30. अनाथपिंडक महाविहार *(जैतवन विहार)* श्रावस्ती से एक मील दूर स्थित, जहां बुद्ध ने *(सबसे अधिक सत्ताईस वर्षावास कर)* उपदेश दिए

दूसरा स्तूप वैशाली[31] में आम्रपालि के बाग में है। यह स्तूप अभी तक विद्यमान है, लेकिन मठ उजाड़ और ध्वस्त है। भिक्षु भी यहां नहीं रहते। तीसरा कपिलवस्तु[32] में है, जहां बुद्ध पैदा हुए थे। अशोक वृक्ष अभी वहां हैं, लेकिन नगर खंडहर हो चुका है। यहां एक स्तूप है, लेकिन यहां कोई भिक्षु या आबादी नहीं है। यह नगर [देश के] सुदूर उत्तर में स्थित है। जंगल अधिकांशतः निर्जन हैं और रास्ते में लुटेरे बहुत हैं। तीर्थयात्रियों का यहां से सुरक्षित निकल पाना बहुत ही कठिन है।

चौथा [महान स्तूप] तीन पथ वाली रत्न जड़ित सीढ़ियों वाला[33] स्तूप है, जो, जहां मध्य भारत का राजा रहता है, उस नगर से पश्चिम दिशा में सात दिन की यात्रा की दूरी पर स्थित है। यह गंगा की दो धाराओं के बीच (की भूमि) पर पड़ता है। यह वह स्थान है, जहां बुद्ध त्र्यस्त्रिविंश[34] स्वर्ग से, चमत्कारपूर्ण ढंग से तीन पथ वाली रत्न-जड़ित सीढ़ियां उत्पन्न कर जंबूद्वीप[35] में उतरे थे। बाईं ओर का पथ स्वर्णिम है, दाईं ओर का रजत और बीच का वैदूर्य जड़ित। बुद्ध बीच वाले पथ से उतरे थे, बाएं पथ से ब्रह्मा[36] और दाएं पथ से शक्र,[37] ये दोनों बुद्ध की सेवा में उनके साथ उतरे थे। ठीक इसी स्थान पर (जहां वे उतरे थे) एक स्तूप का निर्माण किया गया था। वर्तमान में यहां अनेक बौद्ध विहार हैं और बौद्ध भिक्षु भी।

6 दक्षिण भारत

मध्य भारत से दक्षिण की ओर तीन महीने से अधिक चलने के बाद मैं

---

31. मध्य भारत में गंगा के किनारे बसा वैशाली नगर, जहां बुद्ध अपने जीवन काल में अनेक बार आए
32. वर्तमान नेपाल के दक्षिणवर्ती तराई भाग में स्थित नगर कपिलवस्तु *(शाक्य वंशीय राजा शुद्धोधन की राजधानी)*, जहां बुद्ध पैदा हुए थे
33. रत्न, स्वर्ण और रजत की तीन पथ वाली सीढ़ी तुषित स्वर्ग के देवता राजा इंद्र ने चमत्कार करके इसलिए बनाई थी कि तुषित स्वर्ग में अपनी मां रानी माया को धर्मोपदेश देकर बुद्ध को पृथ्वी लोक पर उतरने के लिए माध्यम उपलब्ध करा सकें। इस घटना का दृश्यांकन सांची और भरहुत के तोरणद्वारों पर उत्कीर्ण हैं
34. त्र्यस्त्रिविंश *(तुषित)* छह स्वर्गों में से दूसरे नंबर का स्वर्ग माना जाता है
35. जंबू द्वीप सुमेरू पर्वत के दक्षिण वाला महाद्वीप, जहां हमारी दुनिया बसी हुई है
36. ब्रह्मा हिंदुओं के सर्वोच्च देव हैं
37. शक्र अर्थात् देवताओं का राजा इंद्र जो त्र्यस्त्रिंश स्वर्ग का राजा है, जिसके अधीन चार हजार राजा और बत्तीस स्वर्ग हैं। जो बौद्ध बनना चाहते हैं उनकी वह रक्षा करता है। शक्र को भारत में देवता, जबकि पर्शिया में उसे दैत्य माना जाता है

वहां पहुंचा, जहां दक्षिण भारत का राजा[38] रहता है। राजा के पास आठ सौ हाथी हैं। उसके राज्य का क्षेत्र बहुत बड़ा है। दक्षिण की ओर उसके राज्य का विस्तार दक्षिणवर्ती समुद्र तट तक है, पूर्व दिशा की ओर पूर्ववर्ती समुद्र तट तक, पश्चिम दिशा की ओर पश्चिमवर्ती समुद्र तट तक और उत्तर में उसकी सीमाएं मध्य भारत, पश्चिम तथा पूर्वी भारत से मिलती हैं। वेशभूषा, खान-पान और रीति-रिवाज उसी तरह के हैं, जैसे मध्य भारत के हैं, केवल भाषाओं में ही थोड़ा-सा अंतर है। भूमि *(जलवायु)* मध्य भारत की अपेक्षा गर्म है। सूती कपड़े, हाथी, गाय, भैंस यहां के मुख्य उत्पाद हैं। कुछ भेड़ें भी वहां पाई जाती हैं। ऊंट, खच्चर और गदहे यहां नहीं पाए जाते। यहां धान के खेत हैं, लेकिन गन्ना या ज्वार के नहीं। जहां तक ऐसी चीजें, जैसे कच्चा रेशम और बारीक रेशम, यहां के पांचों क्षेत्रों में नहीं पाया जाता।

राजा, राज्य अधिकारी और आम जन त्रि-रत्नों पर बहुत ही श्रद्धा रखते हैं। यहां अनेक बौद्ध विहार और भिक्षु हैं। हीनयान और महायान दोनों का ही पालन किया जाता है। पहाड़ों में एक बहुत बड़ा बौद्ध मठ था, जिसका निर्माण[39] मनुष्यों द्वारा नहीं, बल्कि बोधिसत्व नागार्जुन[40] के आदेश से यक्षों द्वारा किया गया था। इसके स्तंभ पहाड़ों को काटकर बनाए गए और मठ तीन मंजिला था। वह मठ इतना विशाल था कि इसकी परिधि तीन सौ कदम से अधिक थी। उन दिनों जब नागार्जुन जीवित थे, इस मठ में तीन हजार बौद्ध भिक्षु रहते थे, जिन्हें भोजन के लिए प्रतिदिन पंद्रह पिकल (लगभग 2,000 पौंड) चावल दिया जाता था, लेकिन यह इतना अधिक होता था कि खर्च नहीं हो पाता था, अतः बचा हुआ चावल तत्काल वापस कर दिया जाता था। लेकिन फिर भी इस मात्रा में कोई कमी नहीं की जाती थी। वर्तमान में यह मठ टूट-फूटकर खंडहर

---

38. अनुमानतः यह वटपी, पश्चिम के चालुक्यों की राजधानी बादामी है। हे चो जिस समय दक्षिण भारत की यात्रा पर था, उस समय चालुक्य वंश इस क्षेत्र का प्रमुख राजवंश था
39. ह्वान सांग और फाहियान—इन दोनों के अनुसार यहां एक गुफा मंदिर था, जिसे भ्रमरा कहा जाता था। यह आज भी बेजवाड़ा के पास उंदाविल्लि की पहाड़ी पर विद्यमान है। यह पहाड़ी काली पहाड़ी (तेलुगु भाषी स्थानीय लोगों द्वारा मल्ला-मलाई) के नाम से जानी जाती है
40. इस श्रम साध्य और व्यय साध्य गुफा मठ परिसर का निर्माण नागार्जुन के आदेश पर यक्षों ने नहीं, बल्कि किसी सातवाहन राजा ने कराया था

हो चुका है। कोई भी भिक्षु यहां नहीं रहता। नागार्जुन के सात सौ साल बाद इस मठ का पतन आरंभ हो गया था।

जब मैं दक्षिण भारत के रास्ते में था, तो मैंने पांच-शब्द शैली में एक कविता लिखी थी–

चांदनी रात में
मैं देखता हूं
अपने घर की ओर जाने वाला रास्ता
लौटा दिए हैं हवा ने तिरते हुए बादल।
मैं चाहता था,
बादल इसका लाभ उठाएं
और अपने घर लौट जाएं।
पर हवा चली और तेज
बादलों ने न उसकी सुनी
और न वापस लौट सके।
उत्तरी क्षितिज पर है मेरा देश[41]
और मैं हूं दूसरे देश के धुर पश्चिम में।
गर्म तपते दक्षिण में
नहीं हैं जंगली कलहंस[42]
जो ले जाएं मेरा संदेश मेरे देश।

7. पश्चिम भारत

दक्षिण भारत से उत्तर की ओर दो महीने तक चलने के बाद में उस नगर *(काठियावाड़-वल्लभी राज्य)* में पहुंचा, जहां पश्चिम भारत का राजा रहता है। पश्चिम भारत के राजा के पास भी पांच से छह सौ हाथी हैं। इस भूमि की उपज कपास, चांदी, हाथी, घोड़े, भेड़ और गायें हैं। जौ, गेहूं और विभिन्न प्रकार की सेम प्रजाति की पैदावार भारी मात्रा में होती है, लेकिन चावल और मक्का आदि

41. अनुमान है कि हे चो का घर सिल्ला की राजधानी क्यूंगजू में रहा होगा और हो सकता है कि उनका जन्म इसी क्षेत्र में हुआ हो
42. दक्षिण-भारत में कलहंस नहीं पाए जाते इसलिए हे चो को शिकायत है कि उसे अपना संदेश भेजने के लिए जिन कलहंसों की आवश्यकता है, वे यहां होते ही नहीं, तो उसका संदेशा कौन ले जाएगा?

बहुत कम मात्रा में। भोजन में मुख्यतः रोटी, गेहूं से बनी चीजें, दही, मक्खन और घी शामिल रहता है। बाजारों में क्रय-विक्रय में चांदी के सिक्के और सूती कपड़ों का आदान-प्रदान होता है।

राजा, राज्य अधिकारी गण और आमजन त्रि-रत्नों का बहुत सम्मान करते हैं और उनमें श्रद्धा रखते हैं। यहां बहुत से बौद्ध विहार और बौद्ध भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों ही प्रचलित हैं।

राज्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पश्चिम में इसका विस्तार पश्चिम समुद्रवर्ती तट तक है। यहां के निवासी गायन में बहुत निपुण हैं। देश के अन्य चारों क्षेत्रों की तुलना इस राज्य से नहीं की जा सकती। इस राज्य में अपरांध नहीं के बराबर हैं। यहां अपराध नहीं होते इसलिए न तो यहां दंड संहिता है, न जेल और न मृत्युदंड। वर्तमान में लगभग आधे देश में अरब वालों ने घुसपैठ की हुई है और लूटपाट तथा तबाही मचाई हुई है।[43]

भारत के पांचों क्षेत्रों में यह एक सामान्य नियम है कि जो भी व्यक्ति यात्रा करता है, वह अपने साथ भोजन नहीं ले जाता। वह जहां भी जाए, वहां किसी से भी भोजन मांग सकता है। राजा या राज्य अधिकारी यात्रा पर जाते हैं तो वे अवश्य अपने साथ भोजन की व्यवस्था करके चलते हैं, ताकि उस जगह के निवासियों को परेशानी न हो।

8. उत्तर भारत (जालंधर)

पश्चिम भारत से उत्तर दिशा की ओर तीन महीने से अधिक की यात्रा करने के बाद मैं उत्तर भारत के देश में पहुंचा, जिसे जालंधर कहा जाता है। इस देश के राजा के पास तीन सौ हाथी हैं। वह पहाड़ी की ढाल पर बसे नगर में रहता है। पहाड़ियों में यह नगर धीरे-धीरे उत्तर की ओर फैलता चला गया है। एक देश के रूप में यह एक बहुत ही तंग *(छोटा)* देश है। पैदल और घुड़सवार सेना बहुत छोटी है। यह राज्य प्रायः मध्य भारत के राजाओं या कश्मीर से अनुबंधित रहा है। यही कारण है कि [राजा] पहाड़ी की ढाल पर रहता है।

रीति-रिवाज, पहनावा और भाषा मध्य भारत से अलग नहीं है। यह देश मध्य भारत व अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कुछ ठंडा है। यहां कोहरा या बर्फ तो नहीं

---

43. *अरब हमलावर मुहम्मद बिन कासिम ने इस क्षेत्र के राजा दाहिर पर सन् 712 में आक्रमण कर यहां कब्जा कर रखा है और मारकाट व लूटपाट मचा कर तबाही फैलाई हुई है। हे चो इस क्षेत्र में सन् 725 के लगभग पहुंचा था*

गिरती, लेकिन सर्द हवाएं खूब चलती हैं। इस भूमि की उपज है सूती कपड़े, चावल, गेहूं और हाथी। यहां खच्चर और गदहे कम ही हैं। राजा के पास एक सौ घोड़े हैं, जबकि उसके हरेक मुखिया के पास तीन से पांच घोड़े हैं और आम आदमी के पास एक भी नहीं। इस देश का पश्चिमी भाग समतल है और पूर्वी भाग बर्फीले पहाड़ों से लगा हुआ है। यहां बहुत से बौद्ध विहार और भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों यहां प्रचलन में हैं।

9. सुवर्णगोत्र

पूर्व की ओर का एक छोटा सा राज्य, बर्फीले पहाड़ों में से होकर एक महीने की यात्रा की दूरी पर है यह। इसे सुवर्णगोत्र कहा जाता है। यह तिब्बतियों के नियंत्रण में है। यहां का पहनावा उत्तर-भारत की तरह ही है, परंतु भाषा भिन्न है। यह देश अत्यंत ठंडा है।

10. तक्क

जालंधर से मैं पश्चिम की ओर चला और एक महीने बाद उस देश में पहुंचा, जिसे तक्क कहा जाता है। भाषा जरा सी भिन्न है, लेकिन पहनावा, रीति-रिवाज, पैदावार, मौसम और तापमान उत्तर-भारत के ही समान है। यहां बहुत से मठ और भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों ही प्रचलित हैं। राजा, मुखिया गण और सामान्य जन त्रि-रत्नों का बहुत-बहुत सम्मान करते हैं।

11. सिंधुकुल

तक्क से मैं पश्चिम की ओर चला और दूसरे महीने सिंधुकुल देश पहुंचा। पहनावा, रीति-रिवाज, मौसम और तापमान उत्तर-भारत के समान है, लेकिन भाषा में थोड़ी सी भिन्नता है। इस देश में ऊंट बहुत हैं, जिनसे यहां के लोग भोजन के लिए दूध और मक्खन प्राप्त करते हैं। राजा और प्रजा त्रि-रत्नों का बहुत सम्मान करती है। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। संघभद्र[44] शास्त्रों के सम्मानीय आचार्य और न्यायानुसार शास्त्र के लेखक इस देश के मूल निवासी थे। इस देश में महायान और हीनयान दोनों का पालन किया जाता है। अरबों द्वारा घुसपैठ किए जाने से इस समय इस देश का आधा हिस्सा छिन चुका है। इस देश भारत के पांचों क्षेत्रों *(के लोग)* मुश्किल से ही *(मदिरा)* ज्यादा पीते हैं। मैंने पांचों क्षेत्रों की यात्रा

44. संघभद्र उत्तरी कश्मीर के थे, उन्होंने न्यायानुसारशास्त्र की रचना की थी

की है, लेकिन कभी किसी को पीकर झगड़ा करते नहीं देखा। जो भी लोग पीते हैं, वे केवल ऊर्जा और ताकत प्राप्त करने के लिए पीते हैं, इससे अधिक कुछ नहीं। मैंने किसी भी आदमी को नहीं देखा जो नृत्य, नाटक और भोज का अतिरेक के साथ आनंद उठाता हो।

12. तमस वन

भारत से उत्तर की ओर और आगे एक मठ है, जो तमस वन कहलाता है। उन दिनों जब बुद्ध जीवित थे, वह यहां आए थे और यहां धर्म का उपदेश दिया था। उन्होंने बहुत बड़ी संख्या में मानवों और दैवीय प्राणियों को प्रबुद्ध किया था। मठ के पूर्व में नदी के तट पर एक स्तूप है, जिसमें बुद्ध के केश और नख संरक्षित हैं। इस समय यहां तीन सौ से अधिक भिक्षु हैं। मठ में भी एक महान प्रत्येक बुद्ध[45] के दंत, अस्थि व अन्य वस्तुएं पवित्र स्मारक के रूप में रखी हुई हैं। यहां सात या आठ और भी मठ हैं, जिसमें से प्रत्येक में पांच से छह हजार भिक्षु हैं। मठ सुव्यवस्थित हैं। राजा और प्रजा द्वारा इनका अत्यंत आदर किया जाता है।

13. नगरधन

यहां पहाड़ों में एक ओर मठ है, जो नगरधन कहलाता है। इस मठ में एक चीनी भिक्षु आया था, जिसकी आकस्मिक मृत्यु हो गई थी। इस मठ के वरिष्ठ भिक्षुओं[46] ने मुझे बताया कि वह चीनी भिक्षु मध्य भारत से आया था और वह बहुत प्रतिभाशाली था। वह *त्रिपिटक* की पवित्र शिक्षाओं का बहुत अच्छा जानकार था। वह अपने देश को लौट रहा था कि अचानक बीमार पड़ा और उसकी मृत्यु हो गई। इस बात को सुनकर मुझे बहुत दुख हुआ और मैंने उस भिक्षु की पुण्य स्मृति में चार लय की एक कविता लिखी। यह कविता पांच-शब्द शैली में हैं–

45. प्रत्येक बुद्ध से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है, जो बौद्ध सिद्धांत का अध्ययन किए बिना ही स्वमेय बोधत्व (अर्हत की स्थिति) प्राप्त कर लेता है। सम्बुद्ध या सम्यक् बुद्ध
46. भदंत का मूलरूप से तात्पर्य बुद्ध से है लेकिन यह शब्द बौद्ध सिद्धांतों के लिए भी प्रयुक्त होता है। कभी-कभी महान गुणों से संपन्न प्रज्ञावान किसी बौद्ध भिक्षु को भी भदंत कहा जाता है

तुम्हारे गांव घर के दीपक का
कोई नहीं है रखवाला।
रत्न तीनों गिर चुके हैं
परदेस में।
कहां जाएगी आत्मा?
अनमोल काया
हो चुकी है राख।
यह सोच, गहरा गया है मेरा अवसाद
मैं संतप्त हूं कि
न हो सकी तुम्हारी इच्छा पूर्ण।
कौन जानता है
मार्ग उसकी मातृभूमि का?
कुछ भी दिखाई नहीं देगा
सिवाय लौटते
सफेद बादलों के।

14. कश्मीर

यहां [सिंधुकुल] से मैं पंद्रह दिन उत्तर की ओर चला और एक पर्वतीय देश कश्मीर में जा पहुंचा। कश्मीर को उत्तर भारत के एक अंग की तरह गिना जाता है। यह अपेक्षाकृत एक बड़ा देश है। राजा के पास तीन सौ हाथी हैं और वह पहाड़ों के बीच में रहता है। रास्ते खराब और खतरनाक हैं। इस पर कभी किसी विदेशी राजा द्वारा आक्रमण नहीं किया गया। इस देश की काफी अच्छी फलती-फूलती आबादी है। गरीब बहुत से हैं और धनी कुछ ही हैं। राजा, मुखियाओं और धनी लोगों का पहनावा मध्य-भारत से भिन्न नहीं है। सामान्य जन अपने शरीर को ऊनी कंबलों से ढंके रहते हैं।

इस राज्य की पैदावार तांबा, लोहा, सूती कपड़े, ऊनी कंबल, गाय और भेड़ें हैं। हाथी, छोटे कद के घोड़े, चावल और अंगूर आदि यहां होते हैं। यह देश अत्यधिक ठंडा है, उन सबसे भिन्न, जिनका पहले उल्लेख किया गया है। पतझड़ के मौसम में घना कोहरा पड़ता है और सर्दी में बर्फ। गर्मी में बरसात खूब होती है। पौधे हमेशा हरे रहते हैं और उनकी पत्तियां मोटी होती हैं। जाड़े के मौसम में घास मुरझा जाती है।

कश्मीर की घाटी संकरी और छोटी है। दक्षिण से लेकर उत्तर तक की इसकी दूरी पांच दिन की यात्रा की है। पूर्व से लेकर पश्चिम तक की दूरी तय करने में एक दिन लगता है, इस घाटी की यही सीमाएं हैं। घाटी के अतिरिक्त शेष भाग में दुर्गम पहाड़ हैं। घर की छतें लकड़ी के तख्तों से पाट कर बनाई जाती हैं। घास-फूस और टाइलों का इस्तेमाल नहीं होता। राजा, मुखिया गण, सामान्य जन त्रि-रत्नों का बहुत सम्मान करते हैं। यहां एक ड्रेगन पूल *(नागराज का तालाब)* है। नागराज[47] एक हजार अर्हत भिक्षुओं को प्रतिदिन भेंट *(भोजन)* देता है। हालांकि, किसी ने भी इन पवित्र भिक्षुओं *(अर्हतों)* को नागराज की भेंट प्राप्त करने के उपरांत भोजन करते नहीं देखा। नागराज की भेंट में तालाब के पानी के नीचे से रोटी और चावल को निकलते और ऊपर आते हुए देखा जाता है। इससे यह माना जाता है [उन्होंने भोजन प्राप्त कर लिया]। आज तक यह भेंट बंद नहीं हुई है। राजा और मुखिया लोग जब बाहर जाते हैं तो हाथी की सवारी करते हैं। उनसे निचले स्तर के अधिकारी घोड़ों पर सवारी करते हैं, जबकि आम लोग पैदल चलते हैं। इस देश में अनगिनत मठ और भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों का पालन किया जाता है।

भारत के पांचों क्षेत्रों में प्रचलित परंपरा का पालन करते हुए यहां राजा से लेकर पटरानी, रानियां, राजकुमार और मुखियाओं तथा उनकी पत्नियां तक अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार मठों का निर्माण कराती हैं। उनका कहना है जब प्रत्येक व्यक्ति के अपने निजी विशिष्ट गुण होते हैं तो फिर संयुक्त *(रूप से मठ के निर्माण का)* प्रयास क्यों होना चाहिए? इसी तरह अन्य राजकुमार भी इस *(परंपरा)* का पालन करते हैं।

जहां कहीं भी मठ बनाया जाता है, वहां का गांव और उसके रहनेवाले भेंट स्वरूप तत्काल त्रि-रत्न *(उस मठ)* को दान कर दिए जाते हैं। गांव और उसके रहने वालों को दान में दिए बिना मठ नहीं बनाया जाता। इस देश *(मेरे लिए विदेश)* का यह प्रचलन है कि राजा और उसकी रानियों के अलग-अलग गांव और उनके निवासी *(उनकी जागीर के रूप में)* होते हैं। इसी तरह राजकुमारों और मुखियाओं के अपने गांव और उनके निवासी *(उनकी अपनी जागीर)* होते हैं, जिन्हें वे अपनी स्वेच्छा से, राजा से बिना पूछे, दान कर सकते हैं। यही बात

---

47. नागराज समुद्र में रहता है, वर्षा और पानी पर नियंत्रण रखता है और बौद्धों की रक्षा करता है। वैसे, कभी-कभी नागराज का तात्पर्य उस व्यक्ति से भी होता है जो पानी पर नियंत्रण रखता है

मठ बनवाने के साथ लागू होती है, जब मठ बनवाने की जरूरत होती है तो वे वैसा ही करते हैं और राजा से नहीं पूछते। राजा भी इसके बीच में आने की हिम्मत नहीं करता क्योंकि उसे डर रहता है कि ऐसा करना उसके दुष्कृत्य के रूप में माना जाएगा।

जहां तक सामान्य धनी जनों का प्रश्न है, जिनके पास दान में देने के लिए गांव नहीं होते, वे भी अपनी भरसक कोशिश करके आपस में मिलकर मठों का निर्माण कराते हैं और उसके प्रबंध की व्यवस्था भी स्वयं करते हैं। जब कभी भी उन्हें चीजें प्राप्त होती हैं तो उन्हें वे त्रि-रत्नों *(मठ)* को भेंट कर देते हैं। जैसा कि भारत के पांचों क्षेत्रों में, आदमी *(दास बनाकर)* बेचे नहीं जाते, अतः यहां दास नहीं होते, इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि गांव और उसके निवासी [मठों को] दान में दिए जाएं।

15. बृहत्तर बोलोर

कश्मीर से मैंने पहाड़ों को पार किया और उत्तर-पूर्व की ओर पंद्रह दिन की यात्रा की। यहां पर बृहत्तर बोलोर,[48] यांग-त'उंग और शा-पो-त्जू देश हैं। ये तीनों देश तिब्बती शासन के अंतर्गत हैं। पोशाक, भाषा और रीति-रिवाज सभी भिन्न हैं। लोग फर, सूती कमीजें, बूट और पायजामें पहनते हैं। यहां भूमि तंग *(कम)* है और पहाड़ और नदियां अत्यधिक खतरनाक हैं। यहां पर भी मठ और भिक्षु हैं। लोग त्रि-रत्नों में विश्वास और श्रद्धा रखते हैं। यहां से पूर्व की ओर तिब्बत है। [जहां] न तो कोई मठ है और न मकान [और वहां के लोगों के लिए] बौद्ध धर्म अनजाना है क्योंकि [बृहत्तर बोलोर, यंग-त'उंग और शा-पो-त्जू] के लोग हू जाति के हैं,[49] वे [बौद्ध धर्म में] विश्वास रखते हैं।

16. तिब्बत

इसके उत्तर में तिब्बत है। यह ग्लेशियरों, बर्फीले पहाड़ों और घाटियों के बीच बसा है। लोग फैल्ट *(मोटी ऊन या फर से बने मोटे कपड़े, नमदे)* के तंबुओं में रहते हैं। यहां कोई नगर, उपनगर या मकान नहीं है। यहां की आवासीय इकाइयां वैसी ही है, जैसी तुर्कों[50] की होती हैं। घास और पानी की उपलब्धता के अनुसार

---

48. बाल्तिस्तान

49. तोखारिस्तान

50. अल्ताई पर्वत से शुरू होने वाला क्षेत्र। छठी शताब्दी में यह तु कुह नदी के समीप। वर्तमान में रूस का एक क्षेत्र है

यहां के लोग अपने रहने का स्थान बदलते रहते हैं। हालांकि, यहां का राजा एक निश्चित स्थान पर ही रहता है, फिर भी यहां कोई नगर नहीं है। राजा भी फैल्ट के तंबुओं में ही रहता है और वहीं से अपना राज-काज चलाता है। यहां की पैदावार में भेड़, घोड़े, याक और ऊनी कपड़े शामिल हैं। लोगों के कपड़े ऊन और फर के बने होते हैं। औरतों के कपड़े भी इसी तरह के होते हैं। देश हद दर्जे का ठंडा है, अन्य देशों से बिलकुल ही भिन्न है। परिवारों का भोजन सामान्यतः भुना अन्न है; चावल और पेस्ट्री यहां दुर्लभ है।[51] राजा और उसके लोग बौद्ध धर्म के बारे में कुछ नहीं जानते। यहां कोई मठ या मकान नहीं है। लोग जमीन को खोद कर गड्ढे बनाते हैं और उनमें लेट कर सोते हैं। सोने के लिए पलंग या गद्दे नहीं होते। लोग बेहद गहरे रंग के हैं, यहां कोई भी आदमी साफ-सुथरा, साफ रंग का नहीं मिलेगा। भाषा भी दूसरे देश से भिन्न है। यहां के रहने वाले जूओं को खाने के बेहद शौकीन हैं। जैसा कि वे ऊनी कपड़े पहनते हैं, जिनमें ढेर सारे जुएं और लीखें होती हैं, जब भी वे किसी जूएं को पकड़ पाते हैं, तत्काल उसे अपने मुंह में डाल लेते हैं, वे उसे फेंकते कभी नहीं।

17. लघु बोलोर?

कश्मीर से मैं और आगे उत्तर-पश्चिम की ओर चला, पहाड़ों को पार कर सात दिन बाद मैं लघु बोलोर देश[52] में पहुंचा जो चीन के शासन के अधीन है। पहनावे, रीति-रिवाज, खाना-पीना तथा भाषा में यह बृहत्तर बोलोर के समान है। लोग सूती कमीजें और बूट पहनते हैं, दाढ़ी और बालों को काटते हैं तथा सूती कपड़े की एक पट्टी अपने सिर पर बांधे रहते हैं। औरतें बाल रखती हैं। गरीब लोग बहुत हैं और धनी कुछ ही हैं। घाटी संकरी है और उपजाऊ भूमि सीमित है। पहाड़ पेड़ और घास से रहित, अनुर्वर हैं। बृहत्तर बोलोर मूल रूप से वह स्थान था, जहां लघु बोलोर का राजा रहता था। लेकिन तिब्बती वहां आए तो उसने वहां से भाग कर लघु बोलोर में अपना ठिकाना बना लिया। मुखिया लोग और सामान्य जन वहीं रह गए, वे [राजा के संग] नहीं आए।

18. गंधार

कश्मीर से मैं और उत्तर-पश्चिम की ओर चला। पहाड़ों को पार करते हुए एक

---

51. चावल या गेहूं की रोटी और उबले हुए चावल या उबले हुए जौ

52. गिलगित

महीने की यात्रा के बाद में गंधार[53] देश पहुंचा। राजा और सैन्य अधिकारी सभी तुर्क हैं। यहां के निवासी हू लोग हैं, इनमें ब्राह्मण भी हैं। यह देश पहले कापिशा[54] के राजा के प्रभाव में था। आ-येह नामक एक तुर्की शहजादे ने अपनी हारी हुई फौज के साथ कापिशा के राजा की शरण ली। बाद में, जब तुर्कों की सेना ताकतवर हो गई तो उस शहजादे ने कापिशा के राजा की हत्या कर दी और खुद को राजा घोषित कर दिया। इसके बाद इस देश के उत्तर के सभी देश तुर्क राजा के अधीन हो गए। तुर्क राजा इसी गंधार देश में रहता है।

यहां के पहाड़ पेड़ और घास से रहित, नंगे और बंजर हैं। पहनावा, रीति-रिवाज, भाषा और मौसम सभी कुछ [दूसरे देशों से] अलग है। पहनावे में फर, सूती कमीजें, बूट और पायजामा शामिल हैं। यहां की भूमि जौ और गेहूं के उपयुक्त हैं। यहां गन्ना, मक्का या चावल नहीं होता। अधिकतर लोग भुना हुआ अन्न और पेस्ट्री खाते हैं। कश्मीर, बृहत्तर और लघु बोलोर तथा यांग-त'-उंग को छोड़कर गंधार से लेकर भारत के पांचों क्षेत्रों और उसके आगे मलय द्वीप समूह तक के देशों में कहीं भी अंगूर पैदा नहीं होता, केवल गन्ना पैदा होता है।

तुर्क राजा के पास पांच हाथी और अनगिनत भेड़ें तथा घोड़े हैं। ऊंट, खच्चर और गदहे खूब हैं। [क्योंकि] चीन हू लोगों के विरुद्ध लड़ा था, इसलिए कोई भी पूर्व की ओर बेहद जरूरी काम के बिना नहीं जाता। दक्षिण की ओर की सड़क खतरनाक और कठिन है, जिन पर बहुत से लुटेरे हैं। यहां से लेकर उत्तर तक के लोग बहुत से बुरे धंधों में लगे हुए हैं। वहां शहरों में कसाइयों की बहुत सी दुकानें हैं।

हालांकि, राजा तुर्की मूल का है लेकिन वह त्रि-रत्न में अत्यंत विश्वास रखता है और उनका आदर करता है। राजा, रानी, राजकुमार और उसके मुखिया लोगों ने अलग-अलग मठ बनवाए हैं और वे त्रि-रत्नों की पूजा करते हैं। राजा वर्ष में दो बार वू-चे उत्सव का आयोजन कर प्रार्थना सभा बुलाता है और बहुत बड़ा भोज देता है। राजा को व्यक्तिगत तौर पर जो भी चीजें प्रिय हैं और जिन्हें उपयोग में लाता है, जैसे—अपनी रानी, हाथी और घोड़े—इन सबको वह [बौद्ध संघ को]

---

53. भारत के उत्तर-पश्चिम में स्थित। गंधार मूर्ति कला की एक विशिष्ट शैली, जो यथार्थपरक है, जिसमें मुखाकृति और केश-विन्यास पश्चिमी देशों *(यूनान)* की शैली का होता है। सिकंदर के आक्रमण के पश्चात यह क्षेत्र सम्राट कनिष्क के राज्य के अंतर्गत बौद्ध धर्मी देश था

54. कापिशा का राजा कनिष्क था। कनिष्क बौद्ध धर्म का प्रखर अनुयायी था

दान में दे देता है। फिर वह भिक्षुओं से रानी और हाथियों की कीमत निर्धारित करने के लिए कहता है। भिक्षु जितनी कीमत बताते हैं, उतनी कीमत चुका कर रानी और हाथियों को वापस ले लेता है। जहां तक दान में मिले ऊंटों, घोड़ों, सोने और चांदी के गहनों, कपड़ों तथा फर्नीचर का सवाल है तो इन सबको भिक्षु बेच देते हैं और उससे प्राप्त धन को अपने खर्चों के लिए आपस में बांट लेते हैं। इस तुर्क राजा और उत्तर के अन्य तुर्क राजाओं में यही अंतर है। राजा के बेटे और बेटियां भी राजा की तरह ऐसा ही करते हैं। उन्होंने अलग-अलग मठ बनावाए हैं, वे भी भोज देते हैं, दान देते हैं।

नगर[55] महान नदी सिंधु के उत्तरी किनारे पर बसा हुआ है। इस नगर से पश्चिम की ओर तीन दिन की यात्रा की दूरी पर एक महान मठ बना हुआ है, जिसमें बोधिसत्व वसुबंधु और असंग[56] रहा करते थे। इस मठ को कनिष्क मठ कहा जाता है। मठ के पास एक महान स्तूप भी है, जो निरंतर चमकता रहता है। यह मठ और स्तूप पूर्ववर्ती राजा कनिष्क ने बनवाया था, इसलिए मठ को उसके नाम से जाना जाता है।

नगर के दक्षिण-पूर्व में कुछ दूरी पर वह स्थान है जहां पूर्व बुद्ध [बुद्ध के पूर्व जन्म के बोधिसत्व] ने राजा शिवि के लिए कपोत को बचाया था। वर्तमान में इस स्थान पर कई मठ हैं और भिक्षु रहते हैं। वह स्थान जहां पूर्व बुद्ध [बोधिसत्व] ने पांच यक्षों को अपना सिर और आंखें भेंट कर दी थीं, वह भी इसी देश में है। ये सभी स्थान शहर के दक्षिण-पूर्व पहाड़ों में हैं। इनमें से हरेक स्थान पर मठ हैं और भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों का ही यहां पालन होता है।

19. उद्यान

गंधार से सीधे उत्तर की ओर चलकर पहाड़ों को पार करते हुए, तीन दिन की यात्रा के बाद मैं उद्यान देश में पहुंचा, जिसे इस देश के निवासी उड्डियान कहते हैं। इस देश का राजा त्रि-रत्नों का बेहद सम्मान करता है। अधिकतर गांव और उन गांवों के रहने वाले लोग मठों को दान में दिए हुए हैं। केवल कुछ ही गांव राजा के पास रह गए हैं। इनमें से [इनकी आय में से] वह मठों को भोजन व

55. पुरुषपुर (वर्तमान पेशावर)

56. वसुबंधु का जन्म वर्तमान पेशावर में ईस्वी सन् 400 के लगभग हुआ था। असंग उनके छोटे भाई थे

वस्त्र दान देता है। वह [बौद्ध संघ] को प्रतिदिन भोज देता है। यहां बहुत से मठ और भिक्षु हैं। ये भिक्षु संख्या में यहां के निवासियों की संख्या से कुछ अधिक ही हैं। पहनावा और रीति-रिवाज ग़ंधार के ही समान हैं, लेकिन भाषाएं अलग हैं। यहां ऊंट, खच्चर, भेड़ें खूब हैं। सूती कपड़ा तथा अन्य चीजें एक जैसी ही हैं। मौसम बहुत ठंडा है।

20. चितराल

उद्यान से पंद्रह दिन की उत्तर-पूर्व की ओर और यात्रा करके मैं चितराल देश में पहुंचा, जिसे यहां के निवासी शा-मो चिएह-लो-चे कहते हैं। राजा त्रि-रत्नों का सम्मान करता है और उनमें आस्था रखता है। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। पहनावा और भाषा उद्यान के समान है। यहां भी भेड़ और घोड़े होते हैं।

21. लंपाक

गंधार से आगे पश्चिम की ओर, पहाड़ों को पार कर सात दिन की यात्रा करके मैं लंपाक देश में पहुंचा। यहां कोई राजा नहीं है, मुखिया ही राजकाज संभालता है। यह देश गंधार के अधीन है। पहनावा और भाषा गंधार के समान है। यहां पर भी मठ और भिक्षु हैं। त्रि-रत्नों का सम्मान किया जाता है। यहां महायान का पालन होता है।

22. कापिशा

लंपाक से मैंने फिर पहाड़ों में प्रवेश किया। आठ दिन की यात्रा के बाद मैं कापिशा देश पहुंचा। यह देश भी गंधार के राजा के अधीन है। गर्मियों में राजा गंधार से यहां कापिशा में आता है और यहां रहता है। सर्दियों के मौसम में वह गंधार लौट जाता है और वहीं रहता है। सर्दियों में गंधार का मौसम गर्म रहता है क्योंकि यहां बर्फ नहीं पड़ती इसलिए यहां का वातावरण हल्का गर्म रहता है, न कि ठंडा। जाड़े के मौसम में कापिशा में बर्फ जमा हो जाती है, जिसके कारण सर्दी बढ़ जाती है।

यहां के मूल निवासी हू जाति के लोग हैं, राजा और उसकी फौज तुर्क है। यहां का पहनावा, भाषा और खान-पान अधिकतर तोखारिस्तान[57] के समान है

57. तोखारिस्तान एक़ तुर्क जाति और तुकुह के पूर्वज। तोखारिस्तान मध्य एशिया की एक मृत भाषा है, जिसकी बोली कुचा है

हालांकि, कुछ अंतर भी है। चाहे आदमी हो या औरत, सभी सूती कमीज, पायजामा और बूट पहनते हैं। पुरुष और औरतों के पहनावे में कोई अंतर नहीं है। आदमी अपने बाल और दाढ़ी कटाते हैं, लेकिन औरतें बाल रखती हैं। इस देश की उपज में सूती कपड़े, अंगूर, जौ, गेहूं और केशर तथा ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े, गदहे शामिल हैं।

इस देश के निवासी त्रि-रत्नों का अत्यंत सम्मान करते हैं। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। सामान्य जन तक मठों का निर्माण कराते और उनको सहयोग देते हैं। बड़े शहर में एक मठ है जिसे शा-शी-सु[58] कहा जाता है। इस समय इस मठ में रखे बुद्ध के घुंघराले बाल और पवित्र अस्थि अवशेष देखे जा सकते हैं, इन स्मृति-चिह्नों की राजा, उसके अधिकारी और सामान्य जन रोजाना पूजा करते हैं। हीनयान का यहां प्रचलन है। यह देश पहाड़ों के बीच में स्थित है। पहाड़ों पर कोई भी वनस्पति नहीं होती। यहां की भूमि [ऐसी लगती है जैसे कि] आग से जला दी गई हो।

23. जाबुलिस्तान

कापिशा से मैं पश्चिम दिशा में और आगे बढ़ा। सात दिन बाद मैं जाबुलिस्तान देश में पहुंचा, जिसे यहां के लोग शी-हु-लो-सा-त'अन कहते हैं। मूल निवासी हू जाति के हैं, राजा और उसकी फौज तुर्क है। यहां का राजा कापिशा के राजा का भतीजा है। जो यहां रहने वाली अपनी तुर्क जाति तथा यहां तैनात अपनी घुड़सवार फौज पर नियंत्रण रखता है। वह किसी दूसरे राज्य के अधीन नहीं है, यहां तक कि अपने चाचा *(कापिशा के राजा)* के भी अधीन नहीं है। हालांकि, राजा और उसके अधिकारी तुर्क हैं लेकिन फिर भी वे त्रि-रत्नों का बहुत सम्मान करते हैं। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। बौद्ध धर्म की महायान शाखा का यहां प्रचलन है। यहां का सर्व प्रमुख तुर्क मुखिया, जिसे शा-तुओ-कान कहा जाता है, वह वर्ष में एक बार अपने सोने-चांदी, जो राजा के कोष से भी अधिक होता है, खर्च कर देता है। पहनावा, रीति-रिवाज और इस देश की उपज कापिशा के ही समान है, लेकिन भाषा में थोड़ा सा अंतर है।

---

58. तुर्कों के राजा जो शाह कहे जाते थे, उसकी तर्ज पर शाही मठ

24. बामियान

जाबुलिस्तान से मैंने और आगे, उत्तर की ओर यात्रा की तथा सात दिन बाद में बामियान[59] देश पहुंचा। यहां का राजा हू जाति का है और वह दूसरे देशों से स्वतंत्र है। उसकी फौज बहुत बड़ी और इतनी ताकतवर है कि दूसरे देश उस पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकते। पहनावे में सूती कमीज, फर और नमदे की कमीजें आदि होती हैं। इस देश की उपज में कपास, भेड़ और घोड़े शामिल हैं। अंगूर बहुत पैदा होता है। यहां बर्फ पड़ती है इसलिए बेहद सर्दी रहती है। मकान अधिकतर पहाड़ों की तरफ बनाए जाते हैं। राजा, उसके अधिकारी तथा सामान्य जन त्रि-रत्नों का बहुत सम्मान करते हैं। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। महायान और हीनयान दोनों ही यहां प्रचलित हैं। इस देश के निवासी और जाबुलिस्तान के निवासी बाल तथा दाढ़ी कटवाते हैं। पहनावा कापिशा के समान ही है। हालांकि, बहुत सी भिन्नताएं भी हैं। यहां की स्थानीय बोलियां अन्य देशों से अलग हैं।

25. तोखारिस्तान

बामियान से मैं और आगे, उत्तर की ओर चला और बीस दिन बाद तोखारिस्तान पहुंचा। देश की राजधानी पक्त्रा कहलाती है। वर्तमान में इस पर अरबों की फौजों ने कब्जा किया हुआ है। अरबों ने यहां के राजा को राजधानी छोड़कर भगाने पर मजबूर कर दिया है। वह अब बदख्शां में रहता है, जो पक्त्रा से पूर्व दिशा में एक महीने की यात्रा की दूरी पर है। वह बदख्शां देश भी अरबों के अधीन है।

इस देश की भाषा दूसरे देशों से भिन्न है। वैसे, यह कापिशा की भाषा से मिलती-जुलती है, फिर भी इसका अधिकतर भाग उससे भिन्न है। कपड़े अधिकतर फर, कपास और ऐसी ही चीजों से बनाए जाते हैं। राजा और उसके अधिकारियों से लेकर सामान्य जन तक सभी ऊपरी पहनने वाले कपड़े (कोट या अंगरखे) में फर का इस्तेमाल करते हैं। इस देश में बहुत से ऊंट, खच्चर और भेड़ें हैं। अंगूर खूब पैदा होता है। जहां तक खान-पान का सवाल है तो यहां के लोग केवल पेस्ट्री के ही शौकीन हैं। यह ठंडा देश है। सर्दियों में यहां बर्फीली धुंध छाई रहती है और बर्फ पड़ती है। राजा, मुखिया और सामान्य जन त्रि-रत्नों का सम्मान करते हैं। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। हीनयान यहां

---

59. वर्तमान अफगानिस्तान में

प्रचलित है। यहां के लोग मांसाहार करते हैं, प्याज और लीक (प्याज की जाति का एक कंद) खाते हैं। वे किसी दूसरे धर्म को नहीं मानते। सभी पुरुष अपने बाल और दाढ़ी कटाते हैं, लेकिन औरतें बाल रखती हैं। पूरा क्षेत्र पर्वतीय है।

26. पर्शिया

तोखारिस्तान से मैंने पश्चिम की ओर यात्रा की और एक महीने बाद मैं पर्शिया देश में पहुंचा। पहले इस देश का राजा अरबों पर राज्य करता था *(अब यह देश अरबों के अधीन है)*। पर्शिया के राजा के एक अरब नौकर ने, जो उसके ऊंटों का रखवाला था, बगावत करके राजा की हत्या कर दी और खुद राजा बन बैठा। यही कारण है कि अब इस देश को भी अरब के साथ संबद्ध कर दिया गया है।

इस देश के रहने वालों की पोशाक में विशेष रूप से एक ढीली-ढाली, बड़ी सी सूती कमीज होती है। ये लोग बाल और दाढ़ी कटवाते हैं। पेस्ट्री और गोश्त खाते हैं। अगर यहां चावल होता तो वे उसे पीसकर उससे पेस्ट्री बनाकर खा सकते थे। ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े, बड़े-बड़े गदहे, सूती कपड़े और अन्य कीमती सामान यहां की पैदावारों में शामिल हैं। भाषा अन्य देशों से भिन्न है।

यहां के मूल निवासी परंपरागत रूप से कुशल सौदागर हैं। वे बराबर अपने जलयानों द्वारा पश्चिम सागर को पार करते हुए दक्षिण महासागर तक जाते हैं और श्रीलंका से बहुमूल्य वस्तुएं लाते हैं। इसलिए वे यह दावा करते हैं कि उनका पर्शिया देश खुद ही सभी बहुमूल्य वस्तुएं पैदा करता है। वे मलय द्वीप समूह से सोना लाते हैं, चीन की समुद्री सीमा में पहुंच कर वे सीधे केंटन से रेशम के थान, शानदार कलात्मक रेशमी कपड़े तथा ऐसी ही अन्य कीमती वस्तुएं खरीद कर लाते हैं। इस देश में कपास बहुत बढ़िया किस्म की पैदा होती है। यहां के निवासी मांसाहार के लिए पशुओं को स्वयं काटना पसंद करते हैं। वे ईश्वर में विश्वास रखते हैं। उन्हें बौद्ध धर्म के बारे मे कोई जानकारी नहीं है।

27. अरब

पर्शिया[60] से मैं और आगे उत्तर की ओर चला तथा दस दिन बाद अरबों के देश में पहुंचा। इस देश का राजा *(खलीफा)* अपने देश की भूमि पर यहां नहीं रहता।

60. पर्शिया पर अधिकार करने के बाद अरबों ने उसके अधिकांश भाग को चार प्रांतों में विभाजित कर दिया - खुजिस्तान और फर्स को बसरा के साथ मिला दिया। मेडिया

इस समय वह लघुतर फू-लिन *(दमिश्क)*[61] में रहता है क्योंकि उसने उसे जीत कर अपने कब्जे में किया हुआ है। वैसे भी वह एक द्वीप के समान है और वहां एक मजबूत किला भी है, यही कारण है कि खलीफा वहां रहता है।

ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े, कपास, ऊनी गलीचे तथा अन्य बहुमूल्य चीजें यहां की पैदावारें हैं। पहनावे में बढ़िया सूत की बनी लंबी-चौड़ी, बड़ी कमीजें यहां का खास पहनावा है। इसके ऊपर एक और सूती वस्त्र *(जैकिट जैसा)* पहना जाता है। राजा और आम जन सभी बिना भेदभाव के एक जैसे कपड़े पहनते हैं। औरतें भी वैसी ही लंबी-चौड़ी कमीजें पहनती हैं।

पुरुष अपने बाल कटाते हैं, लेकिन दाढ़ियां रखते हैं। औरतें अपने बाल रखती हैं। जब वे भोजन करते हैं तो उसमें भी संभ्रांत और आम आदमी में भेद नहीं किया जाता। भोजन एक साथ किया जाता है और एक ही तश्तरी *(थाली, परात)* से हरेक आदमी अपने हाथ से खाना उठाकर खाता है, चम्मच और सींख *(कांटे)* का भी प्रयोग किया जाता है। बनी-बनाई तैयार *(रेडीमेड)* चीजें लेना वे बेहद नापसंद करते हैं। उनका कहना है कि मांस खाना है तो जानवर को अपने हाथ से काटना चाहिए। ऐसा करना अपार सौभाग्यदायक होता है। इसलिए इस देश के लोग पशुओं को काटने के बहुत शौकीन हैं। वे ईश्वर में विश्वास करते हैं।

यानी पर्शियन इराक को कूफा से मिला दिया। खुरासान और सेइस्तान। अरब प्रशासन और उसके संघीय क्षेत्रों के बीच आपसी संबंध प्रायः अच्छे रहे। इराकी फौजों ने ट्रांसोजिआना पर विजय पाने के लिए अरबों की लंबे समय तक बराबर सहायता की और आगे मध्य एशिया से आए तुर्कों के हमलों का मुंहतोड़ जवाब देने में साथ दिया। ऐसे प्रमाण प्रचुर मात्रा में हैं, जिससे सिद्ध होता है कि अरबों ने काफी व्यापक पैमाने पर ईरानियों के साथ शादी-ब्याह के संबंध बनाए। आगे चलकर खुरासान में जब अरब जन-जातियों में वैमनस्य पैदा हुआ और वे विभाजित हो गए तो इसका लाभ उठाते हुए अबू मुस्लिम ने अपने यमन लोगों की ताकत को बढ़ाकर वहां के सूबेदार को मार भगाया और सन् 750 में स्वतंत्र शासक बन बैठा

61. दमिश्क अरब साम्राज्य की राजधानी थी। अरबों ने अपनी शक्ति को बढ़ाते हुए अपने साम्राज्य की सीमाएं सन् 715 में स्पेन और मोरक्को से लेकर तुर्किस्तान तथा सिंध तक बढ़ा लीं और भूमध्यसागर पर अपना आधिपत्य जमा लिया। अपने अरब सूबों से प्राप्त संपत्ति से अब्द उल-मलिक और वालिद-प्रथम खलीफाओं ने येरुशलम तथा दमिश्क में भव्य मसजिदें व अन्य इमारतें बनवाईं। अरबों की शक्ति को गंभीर रूप से झटका तब लगा, जब उन्हें सन् 719 में कोंस्टांटिनपोल (कुस्तुनतूनिया) पर किए गए तीसरे हमले में भी बुरी तरह हार का मुंह देखना पड़ा

उन्हें बौद्ध धर्म की कोई जानकारी नहीं है। इस देश के कानून में साष्टांग दंडवत करने की कोई परंपरा नहीं है।

28. बृहत्तर फू-लिन

लघुतर फू-लिन *(दमिश्क)* के उत्तर-पश्चिम में, समुद्र तट के साथ बृहत्तर फू-लिन देश है।[62] यहां के राजा के पास एक बहुत बड़ी और ताकतवर फौज है। यहां का राजा किसी भी अन्य देश के अधीन नहीं है। हालांकि, अरबों ने यहां पर कई बार हमले किए, जो सफल नहीं हो पाए। तुर्कों ने भी एक बार आक्रमण का प्रयास किया लेकिन वे भी असफल रहे, इस देश में बहुत सी बहुमूल्य चीजें हैं। ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े वगैरह यहां बहुतायत में हैं। यहां के लोगों का पहनावा अरबों और पर्शिया के लोगों के तरह का ही है। भाषा दूसरों से भिन्न है।

29. मध्य एशिया के छह देश

अरबों के देश से पूर्व की ओर के सभी देश हू जाति के लोगों के हैं। ये देश हैं—बुखारा, कपूताना, किश, *(कशाना)*, शिन-लो *(ताशकंद)*, मायमार्ग और समरकंद। हालांकि, इनमें से प्रत्येक देश का अपना राजा है, लेकिन ये सभी अरबों के अधीन हैं। ये छोटे-छोटे देश हैं, इनकी फौज बहुत सीमित है और ये अपनी रक्षा करने में असमर्थ हैं। इन देशों की पैदावार में भी कपास, ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े शामिल है। पहनावे में सूती कमीज, पायजामें और फर शामिल है। इनकी भाषाएं भी दूसरे देशों से भिन्न हैं।

ये सभी छहों देश अग्नि-पूजक धर्म के मानने वाले हैं, बौद्ध धर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानते। मात्र समरकंद में एक मठ है, जहां एक बौद्ध भिक्षु रहता है, जो यह नहीं जानता कि त्रि-रत्नों की पूजा कैसे की जाती है। हू जाति के लोगों के इन देशों के रहने वाले लोग अपने बाल और दाढ़ी दोनों ही कटवाते हैं। ये लोग सूती सफेद टोपी पहनना पसंद करते हैं। इनमें एक बहुत ही बुरी प्रथा प्रचलित है व्यभिचारपूर्ण शादियों की। यह प्रथा [अनुमति देती है कि] कोई भी अपनी सगी मां या अपनी बहनों को पत्नियां बना सकता है। पर्शिया के लोग भी अपनी मांओं को अपनी पत्नियों की तरह रख सकते हैं। तोखारिस्तान, कापिशा,

---

62. यह स्थान पूर्वी रोमन साम्राज्य में होना चाहिए। हे चो के उल्लेख के अनुसार, पूर्वी रोमन अरबों और पर्शियनों का पहनावा एक जैसा ही दिखाई देता है

बामियान और जाबुलिस्तान देशों में दो, तीन, पांच या यहां तक की दस भाई भी मिलकर एक औरत से शादी कर उसे अपनी पत्नी बना सकते हैं। भाइयों को अलग-अलग शादी करने की अनुमति नहीं है, क्योंकि, उन्हें भय रहता है कि अलग-अलग शादियों से उनकी जीविकोपार्जन के साधन *(बंटवारे तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण)* बरबाद हो जाएंगे।

30. फरगाना

समरकंद के पूर्व में फरगाना[63] देश है, जहां दो राजा हैं। देश के मध्य से एक बड़ी फू-यू नदी[64] पश्चिम की ओर बहती है। नदी के दक्षिण की ओर के क्षेत्र का राजा अरबों के अधीन है और नदी के उत्तर की ओर का राजा तुर्कों के अधीन। यहां की पैदावार कपास, ऊंट, खच्चर, भेड़ और घोड़े आदि हैं। कपड़े कपास और फर से बने होते हैं। भोजन में मुख्यतः पेस्ट्री और भुने हुए गेहूं होते हैं। भाषा अन्य देशों से भिन्न है। यहां के लोगों को बौद्ध धर्म के बारे में कोई जानकारी नहीं है। यहां पर कोई मठ, भिक्षु या भिक्षुणी नहीं है।

31. खुत्तल

फरगाना के पूर्व में एक देश है, जिसे खुत्तल कहा जाता है। यहां का राजा तुर्की मूल का है। राज्य की आधी आबादी हू जाति के मूल निवासियों की है और आधी तुर्कों की। पैदावार में अंगूर, कपास, ऊनी कंबल, ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े, गदहे और गाय शामिल हैं। कपड़े कपास और फर से बने होते हैं। यहां भाषा में एक-तिहाई तोखारी, एक-तिहाई तुर्की और एक-तिहाई स्थानीय बोली है। राजा, उसके अधिकारी और सामान्य लोग त्रि-रत्नों में आस्था रखते और उनका आदर करते हैं। हीनयान और महायान दोनों ही यहां प्रचलित हैं। यह देश भी अरबों के अधीन है। हालांकि, इसे दूसरे देश एक देश कहते हैं, लेकिन इसके क्षेत्रफल की तुलना चीन के किसी बड़े शहर से ही की जा सकती है। यहां के लोग अपने बाल और दाढ़िया कटवाते हैं। औरतें बाल रखती हैं।

32. तुर्क

हू जाति के लोगों के इन देशों से लेकर उत्तर में उत्तरी सागर तक, पश्चिम में

---

63. वर्तमान तजाकिस्तान और किर्गीजिस्तान का मध्यवर्ती क्षेत्र फरगाना क्षेत्र था
64. फू-यू नदीआमू दरियावर्तमान में रूसी क्षेत्र में बहती है

पश्चिमी सागर तक, पूर्व में चीन तक के बीच का क्षेत्र[65] तुर्कों की आबादी वाला क्षेत्र है। तुर्कों को बौद्ध धर्म के बारे में कोई जानकारी नहीं है। यहां कोई मठ या भिक्षु भी नहीं है। पहनावे में यहां फर और ऊनी कमीजें हैं। कीड़े-मकोड़ों को भी भोजन के काम में लिया जाता है। यहां शहर या मकान नहीं हैं। नमदे के बने तंबुओं से ही मकानों का काम लिया जाता है। इन तंबुओं को लोग अपने साथ जहां जाते हैं, वहां ले जाते हैं। घास और पानी की उपलब्धता के अनुसार ये लोग अपने स्थान बदलते रहते हैं। पुरुष अपने बाल और दाढ़ी कटवाते हैं और औरतें बाल रखती हैं। भाषा दूसरे देशों से अलग है। ये तुर्क लोग हिंसक प्रवृत्ति के हैं, जिन्हें हत्याएं करना बहुत पसंद है। ये अच्छे और बुरे में भेद करना भी नहीं जानते। यहां ऊंट, खच्चर, भेड़, घोड़े आदि खूब हैं।

33. वखान

तोखारिस्तान से पूर्व की ओर मैं सात दिन चला और उस शहर में पहुंचा जहां वखान[66] का राजा रहता है। जब मैं तोखारिस्तान में था, तब मैं वहां, किसी विदेशी भूमि पर पहली बार चीन के किसी राजदूत से मिला था और अपनी अनुभूतियों को चार लय, पांच-शब्द शैली की कविता में अभिव्यक्त किया था :

तुम्हें शिकायत है
पश्चिमी बर्बर लोगों तक का
रास्ता है बहुत दूर
और मैं पूर्व के लंबे
रास्ते के लिए रोता हूं
विकट बर्फीले पहाड़ों के
उजाड़ बीहड़ रास्ते,
तेजी से बहती खतरनाक नदियां
और हर मोड़ पर खड़े लुटेरे,
टूट कर गिरती चट्टानों से
सावधान किए जाते

---

65. यह क्षेत्र कैस्पियन सागर से अराल सागर तक या फिर अराल सागर से बल्खशा तक होना चाहिए

66. बखान पर्शिया में है

उड़ते हुए पक्षी,
तिरछे झूलते हुए पुलों पर
चलते हुए राहगीर
खतरों से खेलते हुए
मैं, जो कभी नहीं रोया
जीवन में अपने
बहा रहा हूं अब
हजारों आंसू।

तोखारिस्तान के एक बर्फीले दिन मैंने एक दूसरी कविता लिखी :

ठंडी बर्फ बन गई है हिम की शिला
ठंडी हवाओं ने चटका दी है धरती,
बर्फ का महासागर जम गया है दूर दूर तक
किनारे की चट्टानों को
काटे दे रही हैं
प्रबल जल प्रपात और नदियां
यहां तक कि
ड्रेगन गेट जल-प्रपात[67] भी
जम कर थम गया है।
कुएं लगते हैं कुंडली मारे
सांपों ने ढंक लिये हों जैसे।
जिस जिजीविषा से
मैं चढ़ता था सीढ़ियां
और गाता था गीत,
पार कैसे कर पाऊंगा
अब मैं चोटियां पामीर की?

वखान के राजा के पास एक छोटा सा कमजोर फौजी दस्ता है, जिससे वह अपने राज्य की रक्षा नहीं कर सकता। इस समय वह अरबों के अधीन है। वह अरबों को *(खिराज में)* प्रति वर्ष तीन हजार रेशमी कपड़ों के थान देता है। वह एक

67. 'ड्रेगन वाटर गेट' एक जल-प्रताप है, जो चीन में है

वादी में रहता है, जो बहुत ही छोटी और तंग है। अधिकांश लोग गरीब हैं। पहनावे में फर और ऊनी कमीजें हैं। राजा बहुत ही महीन रेशमी और सूती कपड़े पहनता है। केवल पेस्ट्री और भुने हुए गेहूं भोजन में इस्तेमाल होते हैं। यह देश दूसरे देशों से बहुत ही ज्यादा ठंडा है। भाषा भी भिन्न है। भेड़ें और गायें भी इस देश में बहुत छोटे कद की हैं। यहां घोड़े और खच्चर भी हैं। मठ और भिक्षु यहां पर हैं। हीनयान का यहां पालन किया जाता है। राजा, उसके अधिकारी और सामान्य जन बुद्ध की उपसना करते हैं और दूसरे धर्मों से उनका कोई संबंध नहीं है। यही कारण है कि दूसरे धर्म इस देश में नहीं हैं। पुरुष अपने बाल और दाढ़ी क़टवाते हैं। औरतें बाल रखती हैं। लोग यहां पहाड़ों पर रहते हैं, जहां न पानी है, न पेड़ हैं और न घास।

34. शिह-नी के नौ देश

वखान के उत्तरी ओर पहाड़ों में शिह-नी[68] के नौ राज्य हैं। इन नौ राजाओं में से प्रत्येक के पास अपनी-अपनी फौजें हैं और ये सभी फौजें एक ही स्थान, पर रहती हैं। इन राजाओं में से एक राजा वखान के राजा के अधीन है, शेष राजा स्वतंत्र हैं और वे किसी दूसरे देश के अधीन नहीं हैं। हाल ही में यहां के दो राजाओं ने चीन की अधीनता स्वीकार की है और आनशी को अपने संदेशवाहक लगातार भेजे हैं।

केवल राजा और उसके मुखिया लोग ही सूती कपड़े और फर पहनते हैं, शेष आम लोग ऊनी कमीजें और फर पहनते हैं। यह क्षेत्र बेहद ठंडा है, [लोग] अपने घर बर्फीले पहाड़ों पर बनाते हैं। यही बात यहां दूसरे देशों से भिन्न है। यहां भेड़ें, घोड़े, गायें और गदहे होते हैं। भाषा भी दूसरे देशों से भिन्न है। राजा अक्सर अपने दो से तीन सौ आदमी ता-पो-मी घाटी में हू जाति के व्यापारियों तथा संदेश वाहकों को लूटने के लिए भेजता रहता है। अगर उन्हें लूट में रेशम मिल जाएगा तो वे उन रेशम के थानों को गोदामों में चुन देंगे और उन्हें गलने के लिए छोड़ देंगे, क्योंकि वे नहीं जानते कि रेशम से पोशाकें कैसे बनाई जाती हैं। इन शिह-नी के देशों में बौद्ध धर्म का प्रचलन नहीं है।

---

68. वर्तमान गिलगित के उत्तर-पश्चिम का क्षेत्र, जिसका उल्लेख ह्वान सांग ने भी किया है, लेकिन वस्तुतः वह इस क्षेत्र में गया नहीं था, इसलिए हे चो का दिया यहां का विवरण महत्वपूर्ण है

35. त्स उंग लिंग

वखान से मैंने पूर्व की ओर पंद्रह दिन की और यात्रा की, ता-पो-मी घाटी को पार किया और त्स उंग लिंग के फौजी छावनी नगर में जा पहुंचा। यह चीन के नियंत्रण में है और चीनी सैनिक यहां पहरे पर हैं। पहले यह राजा पेइ-सिंग का राज्यक्षेत्र था, लेकिन राजा ने चीन के विरुद्ध बगावत की और यहां से भागकर उसने तिब्बतियों की शरण ली। आजकल इस देश में कोई भी *(नागरिक)* नहीं रहता। विदेशी लोग इसे को-फन-तान कहते हैं, जबकि इसका चीनी नाम त्स उंग लिंग है।

36. काशगर

त्स उंग लिंग से मैंने आगे की यात्रा[69] की और एक महीने बाद काशगर[70] पहुंचा। विदेशी लोग इस जगह को काशगीरी के नाम से पुकारते हैं। इस जगह पर भी चीनी सैनिकों का पहरा है। यहां कई मठ और भिक्षु हैं। हीनयान का यहां प्रचलन है। यहां लोग मांस, प्याज, लीक जैसी चीजें खाते हैं। स्थानीय लोग सूती कपड़े पहनते हैं।

37. कूचा

काशगर से मैंने पूर्व की ओर एक महीने की और यात्रा की तथा कूचा[71] देश में पहुंचा। यह आनशी[72] की रक्षा के लिए स्थापित सुरक्षा बलों का मुख्यालय है। यह वह स्थान है जहां चीनी सुरक्षा बल इकट्ठे होते हैं। यहां कूचा में बहुत से मठ और भिक्षु हैं। यहां हीनयान प्रचलित है, जबकि चीनी भिक्षु महायान का पालन करते हैं। मांस, प्याज, लीक तथा ऐसी ही चीजें यहां का भोजन है।

---

69. ह्वान सांग ने भी चीन लौटते समय यही रास्ता पकड़ा था
70. काशगर दो ईरानी शब्दों - काश माने रत्न (ज्वैल) और गर माने नगर (वखान) से मिलकर बना शब्द है। गर शब्द का अर्थ पहाड़ भी है
71. कूचा में आनशी की सुरक्षा के लिए 3,000 चीनी फौज तैनात थी। कूचा में तरिम घाटी के रहने वाले लोग तोखारिस्तानी भाषा बोलते थे। करश, जो सिन-कियांग (चीन) के हिस्से में था, की भाषा भारोपीय (इंडो-यूरोपियन) थी
72. आनशी स्थित चीनी सैन्य सुरक्षा बल का मुख्यालय (जनरल प्रोटेक्टोरेट) तरिम घाटी के सभी देशों का नियंत्रण करता था, तशकुर्गन के पश्चिमी ओर के देशों पर निगरानी रखता था तथा यहां के मार्ग से गुजरने वाले यातायात व व्यापार पर भी नियंत्रण रखता था

38. खोतान

आनशी से दो हजार ली *(एक हजार किलोमीटर)* की दूरी पर खोतान[73] देश है। यहां पर भी बहुत से चीनी सैनिक बलों का मुकाम है। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। यहां महायान का पालन किया जाता है। कोई भी भिक्षु मांसाहार नहीं करता।

यहां से पूर्व दिशावर्ती समस्त क्षेत्र चीन के महान थांग साम्राज्य के अंतर्गत है, यह सभी को ज्ञात है। कोई भी [यहां की स्थिति को] बिना अधिक व्याख्या किए समझ सकता है।

39. आनशी के मठ

मैं काई-यूआन काल के पंद्रहवें साल के ग्यारहवें चांद की अवधि के प्रथम दस दिनों के दौरान[74] आनशी पहुंचा। उस समय चीनी फौज का कमांडर महामहिम चाओ यहां का सैन्य प्रशासक था।

यहां के दो मठ चीनी भिक्षुओं की देख-रेख में हैं। चीनी भिक्षु महायान का पालन करते हैं और मांसाहार नहीं करते। ता-यून मठ का अध्यक्ष सिउ-सिंग है, जो चर्चा-परिचर्चा करने और प्रवचन देने में अत्यंत निपुण है। इससे पहले वह राजधानी के सी-पाओ-तान मठ में भिक्षु था। मठ का मुख्य प्रशासक यी-चाओ *विनय पिटक* का अच्छा ज्ञाता है। वह पहले राजधानी के चुआंग-येन मठ में भिक्षु था। इस मठ का प्रमुख मिंग-यून उच्च नैतिक आदर्शों वाला भिक्षु है। वह भी राजधानी से यहां आया है। ये [तीनों] इस मठ के श्रेष्ठतम प्रमुख हैं। ये धर्म के प्रति पूर्णरूपेण आस्थावान हैं और धार्मिक कृत्यों का संचालन आनंदपूर्वक करते हैं।

दूसरे चीनी मठ लुंग-सिंग का मठाध्यक्ष फा-हाइ हालांकि, चीनी है लेकिन उसका जन्म यहीं आनशी में हुआ है, उसकी विद्वता और आचरण चीन के बौद्ध भिक्षुओं से भिन्न नहीं है।

---

73. खोतान के साथ-साथ कूचा और काशगर सीधे-सीधे आनशी स्थित चीनी सैन्य सुरक्षा बलों के मुख्यालय से जुड़े हुए थे। यहां नियुक्त अधिकारी, मुकदमों की सुनवाई करते तथा नागरिक प्रशासन संचालित करते थे। खोतान की खोतानी भाषा एक भारोपीय (इंडो-यूरोपियन) भाषा थी

74. यह तिथि 27 दिसंबर, 727 है

खोतान में जो चीनी मठ है, उसे लुंग-सिंग-स्सू कहा जाता है। एक चीनी बौद्ध भिक्षु जिसे .... कहा जाता है, मठ का अध्यक्ष है और वह एक दक्ष मठाध्यक्ष है। यह हो-पेई के ची-चोऊ का मूल निवासी है।

काशगर में भी जो चीनी मठ है, जिसे ता-यून-स्सू के नाम से जाना जाता है, की देखभाल एक चीनी भिक्षु करता है, जो मिन-चोऊ का मूल निवासी है।

40. वू चिह

आनशी से मैं पूर्व की दिशा में और आगे चला ... और वू चिह देश में पहुंचा। यह देश भी चीनी सैनिकों के पहरे में है। यहां का राजा और निवासी हू जाति के हैं। यहां अनेक मठ और भिक्षु हैं। हीनयान यहां प्रचलन में है।

आनशी[75] क्षेत्र में चार नगर हैं - आनशी [कूचा], खोतान, काशगर और वू-चिह ... ये सभी चीनी परंपराओं का पालन करते हैं। अपने सिरों पर पगड़ियां बांधते हैं ....।

---

75. आनशी के सैन्य सुरक्षा बल के अंतर्गत कूचा, खोतान, काशगर आदि थे। मार्ग से होकर गुजरने वाले हू जाति के सौदागरों से यातायात कर के रूप में प्राप्त धन से इन चारों स्थलों पर तैनात सेना का खर्च चलता था।

संदर्भ-सूची

अजात कौंडिन्य, 41
अजितवती नदी, 40
अनाथपिंडक विहार (जैतवन विहार), 46
अब्दउल-मलिक, 63
अफगानिस्तान, 61
अभिधर्म, 12
अमोघबज्र (आचार्य) 15, 17, 18, 20-23,
अरब, 62
का आक्रमण, 24, 25, 29
अलेक्जेंडर, कनिंघम, 31, 33, 43
अल्ताई पर्वत, 55
अशोक वृक्ष, 47
अश्वघोष, 28
असंग, 28, 58
अस्सजी (अश्वजित), 41
आनशी, 16, 17, 68, 71
ऑन ह्वानसांग'स ट्रेवल्स इन इंडिया, 27
आ-येह, 54
आर.सी. मजूमदार, 25
इफाथालिट्स (श्वेतहूण), 29
इत्सिंग, 12, 13, 23, 26-30, 39
उंदाविल्लि, 48
उद्यान (स्वातघाटी), 6, 58, 59
ए केटालॉग ऑव बुद्धिस्ट लिटरेचर, 18
एरावती नदी, 40
ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्ट रिलीजन, 12, 14
ए रिकॉर्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंगडमृस, 3-5
कनिष्क, 29, 57, 58
कनिष्ठ मठ, 58
कन्फ्यूशियन, 8, 12
कपिलवस्तु, 4, 47
कपूताना, 64
करश्न, 69
कश्मीर, 53-57
कांप्रेहेंसिव डिक्शनरी ऑव कैनअंस, 18
काई यूआन काल, 70
काठियावाड, 17, 25, 49
कान्यकुब्ज (कन्नौज), 10, 16, 26
कापिशा, 17, 57, 59, 61, 64
काशगर, 24, 69-71
किटोए, 43
किर्गीजिस्तान, 65
किश (कशाना), 64
कुशीनगर, 4, 16, 39, 43
कुषाण, 29
कूचा, 10, 17, 69-71
कूफा, 63
केंगसेन वर्ष, 19
केंटन (या क्वांग चओ), 13, 16, 62
के हेई वर्ष, 3

कोंस्टांटिनपोल (कुस्तुनतूनिया), 63
को-फन-तान, 69
कोरिया, 15
कौशल, 46
क्यूंगजू, 49
क्वेइरवी वर्ष, 19
खाइ थ्वैन काल, 17, 19
खुजिस्तान, 62
खुत्तल, 65
खुरासान, 63
खोतान, 6, 11, 70, 71
रव्वेई चि, 23
गंगानदी, 40, 46, 47
गंधार, 6, 7, 17, 60, 56-59
गिलगित, 56, 68
गुजरात, 25
गुप्त वंश, 29
चओ चि, 20
चांग त्सी, 8
चांग ख्वै, 9, 10
चाओ (महामहिम) , 70
चालुक्य, 16
चिंग-तू मठ, 8
चितराल, 59
चिनक मठ, 21
ची-चोऊ, 71
चीन, 4, 6, 8, 10, 11, 13, 15, 16, 20, 22, 56
चीनी, 3, 10, 13
चीनी भाषा, 17, 32-34
चुंगत्सुंग, 13
चुआंग येन मठ, 70
च्येन ख्वैन काल, 18
च्येन ख्वैन फू थी, 17, 21
छांग आन, 3, 4, 9, 13, 17, 20, 22
छिंगचओ, 4
जंबूद्वीप, 47
जर्मन, 34
जाबुलिस्तान, 60, 61, 65
जालंधर, 17, 50, 51
जे. तकाकुसु, 12, 14
जेम्स लेगी, 3-5
जैड-मेडपूल, 21
जैतवन, 34
ट्रांसोजिआना, 63
ड्रेगन पूल (नागराज का तालाब) , 54
ड्रेगन वाटर गेट, 67
डोवागेर (छशी) ताहाओ, 6
तओ-पा, 6
तक्क, 51
तजाकिस्तान, 65
तमस वन, 52
तरिम घाटी, 69
तलस नदी, 25
तशकुर्गेन, 69
ताइ त्सुंग (थांग सम्राट), 9, 11
ताओ, 12
ताओ यिंग, 3, 34
ताओ श्वैन, 23
ता च्येन फू मठ, 17
ताजिक, 24
ता-पो-मी घाटी, 68, 69
ता-यून मठ, 70
ता-यून, स्सू, 70
तिब्बत, 55
तु कुह नदी, 55
तुन ह्वांग, 6, 45, 22, 23
तुर्किस्तान, 63

तोखारिस्तान, 55, 59, 61, 62, 64, 67
त्रिपिटक, 52
त्रि-रत्न, 39, 45, 48, 50, 51, 54, 55, 57-59, 61, 64, 65
त्र्यस्त्रिविंश स्वर्ग, 47
त्स उंग लिंग, 69
थांग काल, 18
वंश, 25
साम्राज्य, 17, 70
थामस वाटर्स, 26-28
द अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया, 32
द लाइफ ऑव ह्वान सांग, 7-10
दाहिर, 50
धम्मेक स्तूप, 41, 42
धर्मचक्र संघाराम, 42
धर्मपाल (आचार्य), 28
नगरधन, 52
नागराज, 54
नागार्जुन, 28, 48, 49
नालंदा विहार, 11, 13, 28, 31, 33
निकोबार, 16
पक्त्रा, 61
पर्शियन इराक, 63
पर्शिया, 62, 64
पसेसादि (प्रसेनजित), 46
पामीर, 3
पॉल पेलिओट, 15, 22
पुसानिअस, 31
पेइचिंग, 12
पेइ-सिंग, 69
पेशावर, 6, 55
पोता-सिन, 44
पो-ती, 16
प्रत्येक बुद्ध, 42
फरगाना, 65
फर्स, 62
फानवांग चिंग, 18
फा-हाइ, 70
फाहियान, 3, 4, 9, 12, 13, 24, 29, 32, 34, 42, 48
फू-यू (आमू) नदी, 65
फेई-शु, 17
बंधन, 41
बदश्र्वशां, 61
बसरा, 62
बादामी, 48
बामियान, 61, 65
बाल्तिस्तान, 55
बुखारा, 64
बुद्ध, 31, 34, 40, 42, 47
बेजवाड़ा, 48
बेल्गर, 44
बोधगया, 4, 16, 31, 33, 43
बोधिसत्व मंजुश्री, 20
बौद्धसंवत, 16
ब्रह्मा, 47
भदंत, 44
भद्दिय, 41
भरहुत, 47
भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थयात्रा के संस्मरण (संस्मरण), 15-17, 22-25, 32-34
भोज, 13
मंजुश्री, 20
मगध, 10, 13
महान थांग राजवंश के शासनकाल में पश्चिम की तीर्थयात्रा का वृत्तांत, 10
महानाम, 41

महा परिनिर्वाण सुत्त, 41
महाबोधिविहार (बोधगया), 43
महायान, 6, 27, 43, 46, 48, 50, 51, 54, 58-61, 69, 70
महायान-योगवज्र प्रकृति सागर मंजुश्री सहस्रबाहु-सहस्रपत्र मंहातंत्र राज सूत्र, 17
माथाकौर, 40
मायमार्ग, 64
मिंग-यून, 70
मित्रा, 20
मिन चोऊ, 71
मिहिरकुल, 30
मुहम्मद-बिन-कासिम, 25, 50
मृगदाव संघाराम, 42
मेडिया, 62
मोरक्को, 63
यक्ष, 48, 58
यमन, 63
यशोवर्मन, 44
यांतस्त' उंग, 55, 57
यी-चाओ, 70
युआन-चाओ, 24
यू-हुआ मठ, 21
येन चेंग, 22
येरुशलम, 63
राजगीर, 31, 33
राजगृह, 16, 42, 43
रामभार स्तूप, 40, 41
रूस, 55
लंपाक, 59
लघुतर फू-लिन (दमिश्क), 63, 64
लघुत्तर बोलोन, 56, 57
लाइफ ऑव ह्वान सांग, 28
लुंग सिंग मठ, 70
लुंग सिंग स्सू, 71
ल्वो चेन यू, 23
ल्वोत्सिगं क्वो, 16
ल्वो यांग, 8
बरवान, 66-69
वज्रबोधि (आचार्य), 16-18, 20, 22, 23
वप्पी, 48
वप्प, 41
वल्लभी, 17, 25, 49
वसुबंधु, 28, 58
वाराणसी (वारानसी), 16, 41, 44
वालिद-प्रथम, 63
विंसेंट ए.स्मिथ, 32
विनयपिटक, 3, 12-14, 70
विरुढ़क, 46
वू चिह्न, 71
वू-चे, 57
वू थाई-पर्वत, 17, 18, 21
वू (महारानी), 13
वृहत्तर फू-लिन, 4
वृहत्तर बोलोर, 55-57
वेइ वंश, 6
वैशाली, 31, 39, 47
शक्र, 47
शाक्य वंश, 47
शा-तुओ-कान, 60
शानसी, 3
शा-पो-त्जू, 55
शा-मो-चिएह-लो-चे, 59
शा-शी-सु, 60
शिनलो (ताशकंद), 64
शिनल्वो, 15
शिवि, 58

शिह-नी, 68
शीलादित्य, 42
शी-हु-लो-सा' अन, 60
शुद्धोधन, 47
शुभकर सिंह, 22
श्रावस्ती, 46
संघभद्र, 51
समरकंद, 64, 65
सांची, 47
साइक्लीकल करेक्टर्स, 19, 20
सातवाहन वंश, 28, 48
सारनाथ, 4, 16, 33, 42
सिंग-तू मठ, 9
सिंधुकुल, 51, 53
सिंधु नदी, 7, 17, 58
सिउ-सिंग, 70
सिकंदर, 39
का आक्रमण, 57
सिन-कियांग, 69
सिल्ला, 15, 21, 49
सी-पाओ तान मठ, 70
सी-यू-की, 7, 9
सुंगय्विन, 6, 7, 29, 30
सुमात्रा, 13
सुवर्णगोत्र, 51
सेइस्तान, 63
सेमुअल बील, 7-10
सोन-जी, 25
सू छूवान, 9
स्वेइ राजवंश, 9
हंग आन, 18
हनान, 8
हरिबल, 40
हर्षवर्धन, 30, 42
हान क्वांग, 21
हान (जाति), 35
हिंदूकुश, 3
हिस्ट्री ऐंड कल्चर ऑव द इंडियन पीपुल, 25
हीनयान, 27, 43, 46, 48, 50, 51, 54, 58, 60, 61, 65, 68, 69, 71
हुई सिआओ, 21
हू (जाति), 55, 57, 60, 61, 67, 65, 68
हे चो, 15-26, 28-30, 32, 34, 39, 40, 42, 48-50, 64, 68,
हो-पेइ, 71
ह्वांग छकाल, 3
ह्वांग सांग, 8-13, 23, 24, 26-31, 33, 39-42, 44, 48, 68, 69
ह्वेइ चिंग, 3
ह्वेइ यिंग, 3
ह्वेइ लांग, 21, 22
ह्वेइ लिन, 16, 23, 24
ह्वेइली, 9, 10, 28
ह्वेई वेइ, 3
ह्वेइ शंग, 6, 7

मुद्रक : जे. के. ऑफसेट प्रिंटर्स, नांगलोई, दिल्ली - 110041

चीनी बौद्ध यात्री ह्वान सांग जब सन् 629 से लेकर 645 तक भारत में था, उस समय सम्राट हर्षवर्द्धन का साम्राज्य चरमोत्कर्ष पर था। सर्वत्र सुख-शांति थी, लेकिन उसके बाद पश्चिमी भारत में अरबों के तथा उत्तर-पश्चिम में शक व हूणों के आक्रमणों ने भारत के राजनीतिक व सामाजिक इतिहास को ही बदल डाला। ह्वान सांग के कुल अस्सी साल बाद कोरियाई बौद्ध भिक्षु हे चो जब सन् 724 में भारत आता है तो वह ह्वान सांग की बतायी तस्वीर से भारत की तस्वीर को बिलकुल भिन्न पाता है। उल्लेखनीय यह है कि विदेशी आक्रमणों से ग्रस्त, धुंधलाएं, अस्पष्ट दौर - आठवीं शताब्दि के इतिहास का हमारे यहां नितांत अभाव है। हमें अपने बारे में इस दौर की जो भी जानकारी मिलती है, वह मुस्लिम इतिहास या आक्रांताओं के उल्लेखों से मिलती है, ऐसे में हे चो का यह **भारत के पांचों क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा का विवरण** उसके आंखों देखे भारत का एक समसामयिक साक्ष्य तो है ही, एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज भी है, साथ ही मध्य एशिया का भी, जो अब तक प्रकाश में नहीं आ सका है।

नौवीं सदी में गुम हुए चीन के एक गुफा मठ में बंद हे चो का यह यात्रा-विवरण एक हजार साल बाद सन् 1908 में ही बाहर आ सका। जर्मन और अंग्रेजी के एक अनुवाद के बाद हिंदी में पहली बार प्रस्तुत है यह यात्रा-विवरण।

जगदीश चंद्रिकेश बौद्ध साहित्य, विशेषकर बौद्ध कला के अध्येता। 'वैदिक साहित्य में कलाओं का प्रारूप एवं उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि' शोध-प्रबंध तथा 'बंगाल शैली की चित्रकला' के अतिरिक्त सभी बौद्ध स्मारकों के यात्रा-वृतांत के साथ उनके पुरातात्विक पक्ष पर प्रचुर परिमाण में लेखन। हिंदुस्तान टाइम्स की पत्रिका 'कादम्बिनी' के संपादकीय विभाग से सेवा निवृत। संप्रति : स्वतंत्र लेखन।

रु. **40.00** ISBN 978-81-237-4924-2

एकः सूते सकलम्

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया